शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अप्रैल : १९६६ ☆ वर्ष २१वाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४९२ ☆ अंक : १२

सच्चा जैन

हे जीव! यदि तुझे सच्चा जैन बनना हो तो जिनेन्द्र भगवान कथित तत्त्वों का निर्णय कर! जीव और अजीव आदि तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप क्या है, उसके निर्णय बिना सच्चा जैनत्व नहीं होता, और धर्म के हेतु किये जानेवाले उसके समस्त कार्य (वैराग्य, संयम, तप, ध्यानादि) भी असत्य होते हैं। इसलिये आगम का सेवन, युक्ति का अवलंबन, परंपरा गुरुओं का उपदेश एवं स्वानुभव द्वारा तत्त्व निर्णय करना योग्य है। भले ही दूसरा ज्ञान अल्प हो तथापि, अपने हित के लिये मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत तत्त्वों का निर्णय तो अवश्य करो।

इस काल में बुद्धि थोड़ी, आयु अल्प, सत् समागम की दुर्लभता.. उसमें हे जीव! तुझे यही सीखने योग्य है कि जिससे तेरा हित हो.. और जन्म-मरण मिटे।

यथार्थ तत्त्व निर्णय वह जिनत्व की पहली सीढ़ी है; इसलिये तत्त्वनिर्णय करके सच्चा जैन हो। ['रत्नसंग्रह' (गुजराती) से]

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२५२]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विषय सूची

विषय

वीर प्रभ्भु का जन्मोत्सव

पहली कहानी दान तीर्थ के आद्य प्रणेता

महावीर संदेश

समयसार कलश टीका पर प्रवचन

साधकत्व और सिद्ध होने की भूमिका

सबसे पहला कार्य

स्वसंवेदन

अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति हेतु संतों का उपदेश

भव-तीन भोग से विरक्त हो..

दस प्रश्न और उनके उत्तर

अरहंतों द्वारा सेवित स्वाश्रित मोक्षमार्ग

विविध वचनामृत

समाचार संग्रह

अंतर के परिणाम

जो साधन बतलाये वे पार होने के साधन हों तभी सच्चे साधन हैं—अन्यथा निष्फल हैं। व्यवहार में अनंत प्रकार दिखायी देते हैं, तो कैसे पार आये? कोई मनुष्य उतावली से बोलता है, उसे कषाय कहते हैं, कोई धैर्यपूर्वक बोलता है तो उसके शांति दिखायी देती है, परंतु अंतर में भेदविज्ञानमय परिणाम हों, तभी शांति कहलाती है।

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अप्रैल : १९६६ ☆ वर्ष २१वाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४९२ ☆ अंक : १२

वीर प्रभु का जन्मोत्सव

चैत सुदी तेरस का दिन... तब २५६२ वर्ष बाद गुरुदेव ने प्रवचन में वीर प्रभु के जन्मोत्सव का साक्षात्कार कराया... वीर प्रभु के जीवन का भावपूर्ण दर्शन कराया... और वीर गर्जना से वीर प्रभु के संदेश को सुनाया।

एक समय गद्य से तो दूसरे ही समय पद्य से, और तीसरे ही समय वीर प्रभु की लोरियाँ-सुनाते, पुनः तुरंत ही वीर प्रभु की वीर गर्जना सुनाते—ऐसी यह प्रवचन की धारा अद्भुत थी... जिसे सुनते हुए ३-४ हजार श्रोतागण वीर प्रभु की परमभक्ति से डोल रहे थे.. और इस तरह के उमंग भरे वातावरण में वीर प्रभु का जन्मोत्सव गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में मनाया गया था (सं० २०२२) उस दिन का प्रवचन यहाँ दिया जाता है।

आज भगवान महावीर के जन्मकल्याणक का मंगल दिन है। उन्होंने इस भव से पहिले ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार किया था, बाद में उन्नतिक्रम में आगे बढ़ते-बढ़ते इस भव में वे परमात्मा हुए।

पहले के भवों (जन्मों) में अभी उन्हें केवलज्ञान नहीं हुआ था परंतु सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का भान था, अनुभव था; इस भूमिका में आत्मा की साधना करते-करते और उसकी पूर्णता की भावना भाते-भाते बीच में ऐसा विचार उठा कि अहो! इसप्रकार के चैतन्यतत्त्व को जगत के सब

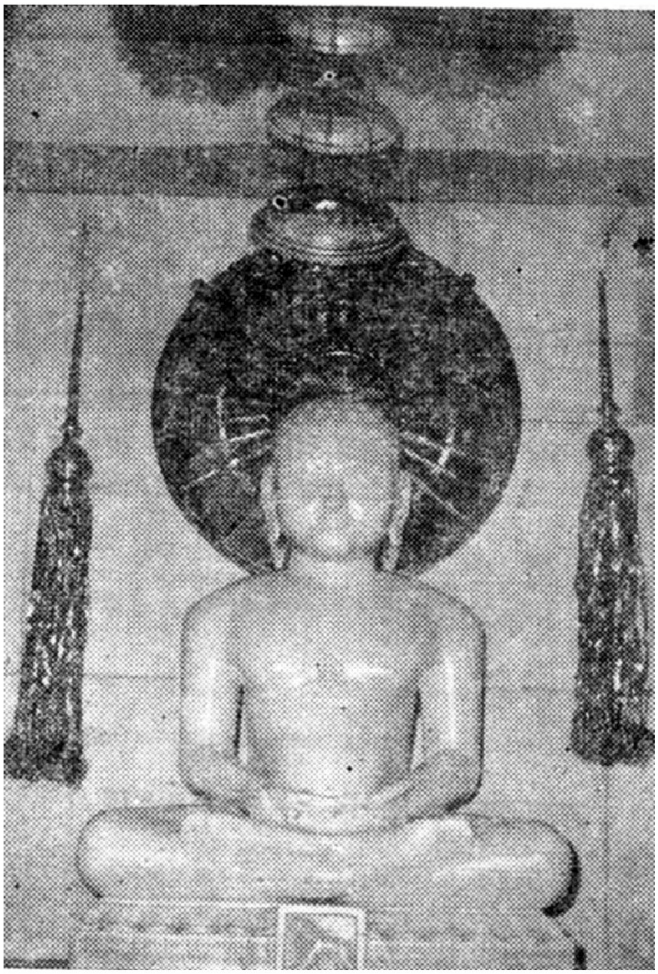

जीव भी समझें; धर्मवृद्धि के साथ इसप्रकार के शुभविकल्प से तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ। जैसे जहाँ अच्छा अनाज पकता है, वहाँ बहुत सी घास भी पकती है। उसीप्रकार धर्म तो सार (निचोड़) है, उस धर्म के साथ-साथ साधकदशा में अलौकिक पुण्य भी पकता है। ऐसे अलौकिक पुण्य के साथ भगवान महावीर की आत्मा इस चैत सुदी तेरस को भरतक्षेत्र में अवतरित हुई। स्वर्ग में से जब वे त्रिशलामाता की कोख में आए तो तीन ज्ञान और सम्यग्दर्शन तो साथ ही लाये। आत्मा के शांतरस के अनुभव की दशा तो माता के कोख में जब आए, तब भी विद्यमान थी।

मैंने १० साल की छोटी उम्र में भजन सीखा था। उसमें आता था कि—

त्रिशला घर महावीर जन्मे रे... ये चैत तेरस चमकी।
तहां बहु देव देवी आये रे... चैत तेरस चमकी॥

यह भजन गाता था। त्रिशला की कोख में अवतरित होकर जगत के प्राणियों को धर्म का संदेश दिया। प्रकृति का यह अनादि नियम है कि यहाँ जगत के अधिक जीव धर्म पाने के पात्र हों, वहीं तीर्थंकर जैसे महात्मा भी उत्पन्न होते हैं। जगत का उद्धार करने के लिये कोई परमात्मा कहीं भी नया अवतार धारण नहीं करते हैं। परंतु परमात्मापद का साधक कोई विशिष्ट आत्मा उन्नतिक्रम में आगे बढ़ते-बढ़ते स्वयं ही परमात्मा हो जाता है, और उसके निमित्त से अनेकों जीव भी संसार से तर जाते हैं।

अरे! भगवान जब जन्म धारण करते हैं, तब इन्द्र-इन्द्राणी आकर अलौकिक भक्तिपूर्वक बड़ा भारी उत्सव करते हैं। इसके पुण्य की क्या बात!! इन्द्र और इन्द्राणी अभिषेक करने के बाद माताजी को सोंपते हुए प्रार्थना करते हैं कि हे माता!

पुत्र तुम्हारा स्वामी हजारा तरण तारण जहाज है...
माता जतन करके रखना.. तुम पुत्र हमारा आधार है...

अहो, माता! आपका पुत्र तो जगत का तारणहार है—हे माता! तू अकेले महावीर की माता नहीं परंतु हमारी—संपूर्ण जगत की माता है। हे रत्नकूखधारिणी माता! आपको भी हम नमस्कार करते हैं। भगवान की माता भी एक ही भव में मोक्ष प्राप्त करनेवाली है, इन्द्र-इन्द्राणी भी एक भवतारी हैं, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। ऐसे इन्द्र आदि भी परम भक्ति से भगवान के जन्म महोत्सव को मनाते हैं। ऐसे भगवान का आज जन्म दिवस है।

बाद में भगवान ने ३० वर्ष की कुमार अवस्था में ही मुनिरूप प्रकट किया, चैतन्य में रमणरूप अप्रमत्तदशा प्रगट की, और चार ज्ञान प्राप्त किये..। पश्चात् स्वरूप में विशेष लीन होकर, श्रेणी चढ़कर, केवलज्ञान प्रकट कर परमात्मा हो गए, अरिहंत हो गए, और तत्पश्चात् सहज, बिना किसी इच्छा के जगत के भव्यजीवों के महान भाग्य से भगवान की दिव्यवाणी खिरी.. जिसे सुनकर अनेकानेक जीवों को धर्म मिला।

भगवान महावीर ने दिव्यवाणी में क्या कहा? 'अहिंसा परमोधर्मः'—अहिंसा यह परमधर्म है.. यह वीर का उपदेश है। चैतन्यस्वभावी आत्मा में राग एवं द्वेष के भाव ही उत्पन्न न हों तथा वीतरागभाव बना रहे—यही वीर की अहिंसा है, और यही धर्म है। जो आत्मा वीर है, वह अंतरंग के पुरुषार्थ की वीरता द्वारा वीर के वीतरागमार्ग पर चले, वही वीर का मार्ग है, ऐसा वीर का मार्ग स्थायी-अडोल है... वीर के मार्ग में जो भी आया, उसे वीतरागता मिले बिना नहीं रहती।

भगवान का भक्त कहता है, अहो वीर जिनेश्वर! तेरे चरणों में रहूँ और तेरे मार्ग पर चलूँ.. अंतर में चैतन्यरस से भरपूर असंख्य प्रदेशी समुद्र, जहाँ मिला कि मोह भागा और जीत का नगाड़ा बजा.. अहो, इसप्रकार की वीरता तो आत्मा में ही है। कायर को यह बात कठिन लगती है, और बाह्यदृष्टि की—पराश्रय की बात सरल लगती है। परन्तु हे नाथ! हमने तो आपकी वाणी से जाना कि वीरत्व तो आत्मा में ही है। ज्ञान-चारित्र की शक्ति द्वारा अंदर के इस ध्रुवपद की प्राप्ति होती है। अरे प्रभु! तूने अपने में रहनेवाली अपनी प्रभुता को कभी नहीं जाना। अपनी अनंत शक्तियों को

बिना पहिचाने ही अनादि परभावों में धर्म मानकर तूने अपनी आत्मा की हिंसा की है। यह अधर्म है। और राग से पार चैतन्यस्वभाव है, उसे शुभाशुभ से परे पहिचानना और रागादि परभावों से चैतन्यप्राण की तनिक भी चंचल न होने देना—यही सच्ची अहिंसा है, यही वीर की अहिंसा है—यही वीर की गर्जना है।

संत लोग तो सर्वज्ञ के प्रतिनिधि हैं। वे सर्वज्ञ का संदेश जगत को सुनाते हैं कि अरे जीवों! प्रतीति तो करो.. तुम्हारे में ही ऐसा सर्वज्ञ पद भरा हुआ है.. जगत के पदार्थों के बिना ही स्वयं अपने स्वभाव से परिपूर्ण है, परंतु 'मुझे अमुक परवस्तु के बिना चल नहीं सकता' ऐसा पराधीन दृष्टि से माना है और इसी पराश्रय के कारण संसार में घूमा है। वास्तव में तो पर के बिना ही (अर्थात् पर के अभाव से ही) वह स्वयं अपने से स्थिर है। प्रत्येक तत्त्व स्वयं के 'अस्ति' (त्व) से और पर के 'नास्ति' (त्व) से ही अवस्थित है। अपने अनंत गुण अपने में ही हैं:—

जँह चेतन तहँ अनंत गुण कहते हैं प्रभु जिन,
प्रकट अनुभव आतमा निर्मल करो सप्रेम रे...
चैतन्यप्रभु.. प्रभुता तेरी चेतन्यधाम में...

वीर प्रभु की कही इस वाणी को सुपात्र जीवों ने ग्रहण किया... और अंतर्मुख होकर सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त किया। वीर प्रभु की वाणी का प्रवाह—धोध संतों ने ग्रहण किया और शास्त्रों में संगृहीत किया। अहा! यह वाणी सुनकर शेर का क्रूर वक्र, स्वभाव छूट गया.. साँप और नेवला का बैर छूट गया... जहरी नाग का जहरी स्वभाव छूट गया... बड़े-बड़े राजकुमारों ने इस वाणी को ग्रहण कर आत्मज्ञान प्राप्त किये... निर्विकल्प चैतन्यतत्त्व क्या चीज़ है—इसका उपदेश भगवान की वाणी में आया। उसका प्रवाह आज भी चला आता है। अंतर में विचार-मनन करे तो अपने पुरुषार्थ से उसकी प्राप्ति होती है। तथा स्वाश्रय का वीतरागभावरूप जो वीरमार्ग है, उस वीरमार्ग को साधकर आत्मा स्वयं परमात्मा हो जाता है—यह है महावीर का संदेश।

बोलिये.. भगवान.. महावीर.. की.. जय...
महावीर-मार्ग प्रकाशक संतों की जय...

पहली कहानी

दान तीर्थ के आद्य प्रणेता

आठ भव के साथी ऋषभदेव और श्रेयांसकुमार के संबंध का यह प्रसंग है।

बैशाख सुदी तीज का दिन है।

बैशाख सुदी दौज की रात को श्रेयांसकुमार ने स्वप्न में देखा कि अहा! मेरे आँगन में कल्पवृक्ष आया है। देव मेरे आँगन में बाजे बजा रहे हैं, पुष्पवृष्टि हो रही है... इत्यादि महामंगलकारी स्वप्न से श्रेयांसकुमार बहुत प्रसन्न होते हैं।

बैशाख महीना अर्थात् गन्ने का मौसम!... गन्ने के बढ़िया रस से घड़े भर-भरके प्रजाजन श्रेयांसकुमार के यहाँ रख जाते हैं।

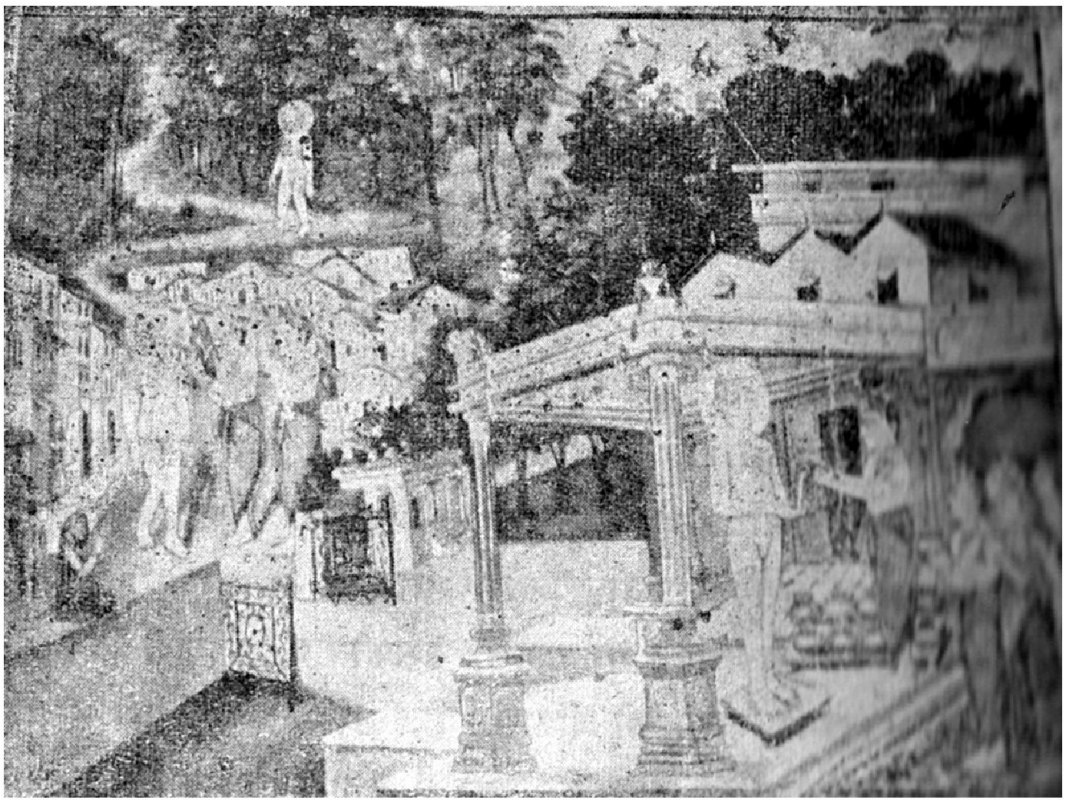

भोजन के समय एक अवधूत योगी चैतन्य की प्रभा में मस्त चला आता है। आत्मसाधना में मस्त इस योगी को एक वर्ष का उपवास हो गया है, ये हैं भगवान आदिनाथ मुनिराज! उनको देखते ही श्रेयांसकुमार को उनके साथ के अनेक भवों के संस्कार ताजा हो जाते हैं, उनके साथ मुनिवरों को दिये हुए आहारदान का स्मरण आता है... और परमभक्तिपूर्वक वर्ष उपरांत के तपस्वी योगीराज को अपने आँगन में विधिपूर्वक पड़गाहन करके नवधाभक्तिपूर्वक गन्ने के रस का आहारदान करते हैं.. भरतक्षेत्र में इस चौबीसी में मुनिराज को आहार देने का यह प्रसंग असंख्य वर्षों के बाद पहिले पहिले बना। भरत चक्रवर्ती जैसों ने उसका अनुमोदन किया... और बाद में श्रेयांसकुमार दीक्षित होकर भगवान आदिनाथ के गणधर बने... और अंत में अक्षयपद प्राप्त किया।

—: यह है अक्षय तीज का छोटा सा इतिहास :—

श्रुत के सागर में से निकला एक रत्न

तदेवैकं परं रत्नं सर्वशास्त्रमहोदधेः।
रमणीयेषु सर्वेषु तदेकं पुरतः स्थितम्॥४३॥

वह, एक चैतन्यस्वरूप आत्मा ही समस्त शास्त्ररूपी महा-समुद्र का परमरत्न है (अर्थात् उस चैतन्यरत्न की प्राप्ति के ही लिये सर्व शास्त्र का अध्ययन किया जाता है); शास्त्रों के समुद्र का मंथन कर-करके संतों ने क्या निकाला?—कि श्रुत के समुद्र में डुबकी मारकर संतों ने इस एक परम चैतन्यरूपी रत्न को निकाला। समस्त रमणीय पदार्थों में चैतन्यस्वरूप आत्मा ही एक रमणीय तथा उत्कृष्ट है। (पद्मनंदी—एकत्व अशीति अधिकार)

चैत सुदी १३ के दिन श्री कानजी स्वामी के द्वारा सुनाया हुआ

महावीर संदेश

[सोनगढ़ में ३० साल पूर्व स्टार ऑफ इण्डिया नामक मकान में जहाँ पूज्य स्वामीजी तीन साल तक रहे थे, परिवर्तन किया था, वह परिवर्तन धर्मवृद्धि का कारण हुआ है, उस मकान में स्वामीजी द्वारा सुनाया हुआ महावीर संदेश।]

आज चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्मकल्याणक दिवस है। इन्द्रों ने भी इस उत्सव का समारोह किया था। भगवान का जन्म बहुत से जीवों के उद्धार का कारण है। इसीलिये वह कल्याणक कहलाता है। उन्होंने अपने आत्मभान को प्राप्त कर उन्नति क्रम में चढ़ते-चढ़ते पूर्णानंद दशा को इस भव में प्राप्त किया था। उन्होंने आत्मभान प्राप्त कर वीरता प्रगट की थी किंतु पूर्णता प्राप्त नहीं हुयी थी, तब धर्म की पूर्णता प्राप्त करने की भावना में अपने विकल्प से तीर्थंकर नाम प्रकृति का बंध किया। चैतन्य के अतीन्द्रिय स्वभाव का मूल्यांकन कर अंतर में उनका वेदन करते-करते यह अवतार हुआ। पहले स्वभाव की कीमत भूतकर अज्ञान से पर संयोग की कीमत करता था, बाद में चिदानंदस्वभाव का भान कर उसकी महिमा पहचानकर भगवान आत्मा की अनुभूति की और आत्मा की तरफ झुकाव हुआ। अहा! इस भव में भगवान ने आत्मा की साधना पूरी की। इन्द्र भगवान को आज मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक करने के लिये ले गया था। चैतन्य वज्र में जैसे विभाव का प्रवेश नहीं होता; उसीप्रकार भगवान का शरीर भी वज्रमय था। इन्द्र ने उनके सिर पर योजन-योजन के घड़े भरकर बालक शरीर पर जल डाला था। किंतु उनके जरा भी आंच नहीं आई। उन्होंने अंतर में चिदानंद तत्त्व को शरीर और राग से भिन्न देखा था।

ऐसे भगवान को देखते हुए इन्द्र और इन्द्राणी भी भक्ति से नाच उठे थे। अहा! अनादि संसार का अंत कर भगवान अब इस भव में सादि अनंत सिद्धदशा की साधना करेंगे। राग और स्वभाव की एकतारूप बेड़ी के बंधन को यह तोड़नेवाला है। ऐसे भानसहित बच्चा जैसे माता-पिता के पास नाच उठता है, उसीप्रकार इन्द्र भी भगवान के सन्मुख नाच उठा था। उससमय भगवान चौथे गुणस्थान में थे, और इन्द्र भी चौथे गुणस्थान में था, फिर भी इन्द्र भगवान के सामने भक्ति से नाच उठा था कि अहो भरतक्षेत्र का यह समय धन्य है।

ये तीर्थंकर भगवान वीरता प्रकट कर अपने तो पूर्ण परमात्मा बनेंगे और जगत के जीवों को

भी संसार से तरने में निमित्त बनेंगे। धन्य है भगवान का अवतार। इनकी जन्म की घड़ी धन्य है। वह पल, वह दिवस धन्य है, जिसमें वीर प्रभु ने जन्म लिया। भगवान ने अमृत का सागर उछालकर मुनिदशा और केवलज्ञान प्रकट किया और तत्पश्चात् पावापुर से मोक्ष प्राप्त किया।

इसप्रकार भगवान आत्मा का परिवर्तन होने से उसका संपूर्ण संसार समाप्त हो गया।

स्वामीजी ने कहा कि—अपना भी आज 'परिवर्तन' का दिवस है। ३० वर्ष पहले यहाँ परिवर्तन किया था। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा दिव्यध्वनि द्वारा जो उपदेश देते हैं, वह 'प्रवचन' कहलाता है, उस प्रवचन का सार क्या है, यह कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने इस 'प्रवचनसार' में बताया है।

कुन्दकुन्दाचार्य का भगवान महावीर से प्रत्यक्ष संबंध नहीं हुआ था, उनकी उनके प्रति परोक्ष भक्ति थी और सीमन्धर भगवान से साक्षात्कार हुआ था। अहो! पंचम काल में इस क्षेत्र के जीव को अन्य क्षेत्र के तीर्थंकर का दर्शन मिले, यह कितनी उसकी योग्यता और कितना पुण्य। ऐसे आचार्यदेव ने तीर्थंकर परमात्मा की वाणी श्रवण कर इस शास्त्र की रचना की थी। आत्मा का स्वसंवेदन कैसे हो, यह १७२वीं गाथा में अलौकिक प्रकार से बताया है। अलिंगग्रहण के २० बोलों में से आज छट्ठा बोल चालू है।

अतीन्द्रिय चिदानंदमूर्ति भगवान आत्मा इन्द्रियों द्वारा जाननेवाला नहीं है और वह इन्द्रियों द्वारा जाना भी नहीं जाता। इन्द्रियगम्य चिह्नों द्वारा भी वह नहीं जाना जाता। वह अपने अकेले अनुमान द्वारा भी नहीं जाना जाता और वह अकेले अनुमान द्वारा पर को जाने, ऐसा भी नहीं है। लिंग से अर्थात् इन्द्रियों, विकल्पों या अकेले अनुमान से नहीं किंतु प्रत्यक्ष स्वसंवेदन से जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। प्रथम पाँच बोलों में इन्द्रियों या अकेले अनुमान आदि थे, व्यवहार का खंडन किया और अब इस छट्ठे बोल में प्रत्यक्ष ज्ञाता बताकर 'अस्ति' द्वारा आत्मा का निर्णय किया गया है।

वर्तमान पर्याय की जागृति में निर्णय करने का निश्चय न हो, तब तक वह अंतर्मुख नहीं हो सकता। स्वसंवेदन से स्वयं प्रकाशित हो, ऐसा स्वयं-प्रकाशी आत्मा है। भाई! चैतन्य की महिमा की अनुभूति करते-करते ऐसा लगे कि अहो! मेरी यह वस्तु ही स्वयं परिपूर्ण ज्ञानानंदस्वरूप है, ऐसे निर्णय द्वारा अंतर्मुख प्रवृत्ति होने पर आत्मा स्वसंवेदन द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञाता हो जाता है, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। जो पूर्णता को प्राप्त हुआ, उसने परमात्मा का साक्षात्कार किया और वही वीर

होकर 'वीर' के मार्ग पर चला—यह है भगवान महावीर का संदेश!

भाई! बाहर का सब कुछ भूलकर अंतर वस्तु का निर्णय करने में ऐसा जोर लगा कि दृष्टि अंतर में प्रवृत्त हो। स्वभाव का अधिकाधिक महत्त्व लक्ष्य में करने से उसका (स्वभाव का) अनुभव होता है—इसका नाम धर्म है। इसके अतिरिक्त अन्य झगड़ों में लगना मार्ग में विघ्नरूप है। तुम्हारे ज्ञान और आनंद का प्रत्यक्ष वेदन हो, तब वह न जाना जाए ऐसा नहीं है। आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता होकर अपने स्वसंवेदन द्वारा अपने को जानता है।

इस छट्ठे बोल में आत्मा को प्रत्यक्ष ज्ञाता बताया गया है। आत्मा इन्द्रियों की अपेक्षा बिना, मन या विकल्पों के बिना स्वभाव से ही स्वसंवेदन द्वारा अपने को जानता है।

उपयोग आत्मा का चिह्न है। वह उपयोग नाम के लक्षण द्वारा ज्ञेयों का अवलंबन नहीं है किंतु वह उपयोग आत्मा का ही अवलंबन कर काम करे, ऐसा उसका स्वभाव है। उपयोग द्वारा पर को बहुत जाने या अनेक शास्त्रों को पढ़े इसलिये उपयोग को अंतर में प्रवृत्त करना सरल होगा ऐसा नहीं है। उपयोग का आत्मा ही अवलंबन है।

शास्त्र के अवलंबनवाला उपयोग वास्तविक उपयोग नहीं है। उसमें परावलंबन है। उसमें उपयोग की हानि है। उपयोग अकेले-पर का अवलंबन करे तो ऐसे उपयोग को आत्मा का उपयोग कौन कहे? उपयोग अंतर में प्रवृत्त होकर आत्मद्रव्य का अवलंबन करे, तभी वास्तविक उपयोग है, उसमें ही आत्मा का ग्रहण है। उपयोग आत्मा के घर को छोड़कर पर घर में ही ठहरे तो उस उपयोग को व्यभिचारिणी बुद्धि कहते हैं। भाई! उपयोग को अंतर में प्रवृत्त किये बिना तीन काल में भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। इससे शास्त्र के अभ्यास का निषेध नहीं है किंतु जो अकेले शास्त्र के अभ्यास से ही धर्म मान लेता हो और उपयोग को अंतर में प्रवृत्त करने का उद्यम नहीं करता हो, उसको आचार्य कहते हैं कि खड़े रहो, इस अकेले शास्त्र से धर्म नहीं होता। उपयोग को अंतर में प्रवृत्त कर आत्मा को लक्ष्य में लिये बिना कभी धर्म नहीं होता। जो उपयोग को अंतर में प्रवृत्त नहीं करे और शास्त्र का भी अभ्यास छोड़ दे तो वह स्वच्छन्छी बनकर अशुभ में प्रवृत्त होगा। भले ही अकेले शास्त्र से अंतर में जाना नहीं हो किंतु जिसको आत्मानुभव का प्रेम हो, वह उसके अभ्यास के लिये शास्त्राभ्यास, उपदेश श्रवण आदि का भी प्रेम करता है, इसप्रकार दोनों पक्षों का विवेक करना चाहिए।

उपयोग को परावलंबन से छुड़ाकर अंतर के चैतन्य के अवलंबन से पूर्णता साधकर

भगवान वीर ने यह काम स्वयं किया और जगत को भी यही संदेश दिया।

अहो! उन्होंने अनादि के विकार का अंत कर दिया और अप्रतिहत निर्मल दशा प्रकट की और वे सदाकाल स्वावलंबन में अनंत काल तक रहेंगे और इसी का उन्होंने उपदेश दिया। इसप्रकार उन्होंने मोक्ष की साधना कर मोक्ष का पंथ बताया। इसी से उनका जन्म दिवस मनाया जाता है।

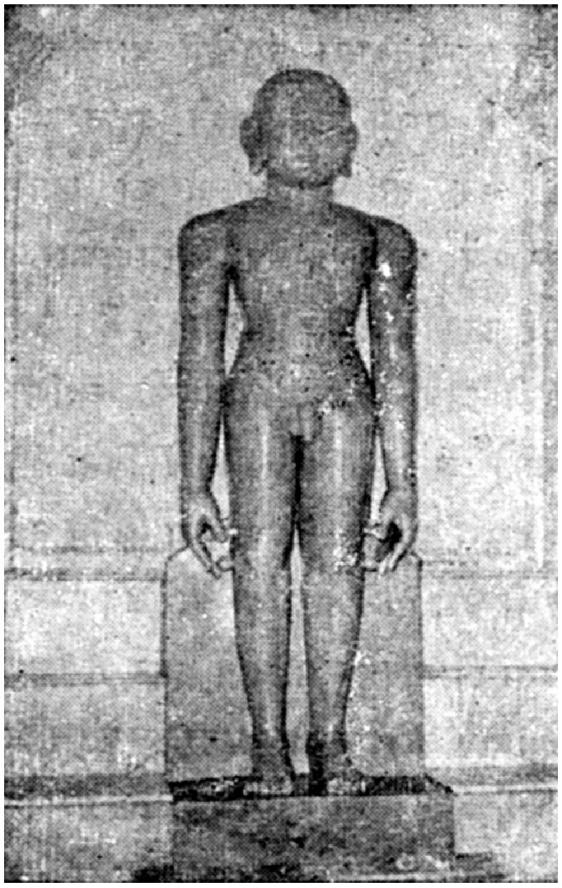

वीर प्रभु ने उपयोग को अंतर्मुख कर आत्मिक वीरता द्वारा मोक्षदशा प्राप्त की और अपने उपदेश में भी इसी मार्ग की घोषणा की कि हे जीवो! तुम अपने उपयोग को अंतर में प्रवृत्त कर आत्मा को स्वसंवेदन द्वारा प्रत्यक्ष करो। देखो यह वीर गर्जना! यह है वीर प्रभु का संदेश। ●●

समयसार कलश टीका पर प्रवचन

शुद्धात्मा को नमस्काररूप अप्रतिहत मांगलिक

(फाल्गुन शुक्ला २ को सोनगढ़ में सीमंधरनाथ की मंगल प्रतिष्ठा हुई थी, जिसे वीर नि० सं० २४९१ को २५ वर्ष हो गये। इस मंगल दिवस के अवसर पर सोनगढ़ में सीमंधर भक्त श्री कानजीस्वामी के प्रवचन में समयसार कलश टीका का स्वाध्याय प्रारम्भ हुआ। उसका मंगल प्रवचन यहाँ उद्धृत किया जाता है।)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्याचकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥१॥

अनेकांतरूपी अमृत को पीनेवाले अमृतचंद्राचार्य, जो मानों सचल सिद्ध हों, ऐसी मुनिदशा में झूलते थे; उन्होंने कुन्दकुन्द प्रभु के हृदय के रहस्य समयसार की टीका में प्रकट किया था। उस टीका में २७८ कलश हैं, जैसे मंदिर पर स्वर्ण कलश सुशोभित होते हैं, वैसे समयसाररूपी मंदिर के ये श्लोकरूपी स्वर्ण कलश सुशोभित होते हैं। आज सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा का दिन है और आज ही यह शास्त्र प्रारम्भ होता है। श्री राजमल्लजी पांडे ने ढूँढ़ारी भाषा में लगभग ४०० वर्ष पूर्व समयसार के कलशों पर टीका लिखी थी।

यह पहला कलश समयसार की टीका का अपूर्व मांगलिक है। आत्मा का शुद्ध अस्तिस्वभाव क्या है, उसका अलौकिक वर्णन है। आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव अगाध सामर्थ्य से परिपूर्ण है, उसकी अतीन्द्रिय स्वच्छता में लोकालोक सहज ही ज्ञात हो जाते हैं। जैसे अगाध आकाश में अनेक नक्षत्र तारा झलकते हैं; वैसे ही स्वच्छ चैतन्याकाश में लोकालोक ज्ञेयरूप (आकाश में एक नक्षत्र की तरह) झलकते हैं। ज्ञेयों को जानने के लिए बाहर में लक्ष नहीं करना पड़ता। यह ज्ञानस्वरूपी शुद्धात्मा ही 'समयसार' है, उसी का इस ग्रंथ में वर्णन है। उसे सारभूत मानकर इस मांगलिक में नमस्कार किया गया है। अहो! अमृतचन्द्राचार्य के इस मंगलाचरण में अतीन्द्रिय आत्मरस झरता है। प्रथम सतत्त्व बताया है। षट्खंडागम में भी सर्व प्रथम 'सत् प्ररूपणा' लिखी है। (जो वस्तु सत् है, उसकी प्ररूपणा है)। इस मंगल में भी भावाय.. नमः यह कहकर सत्स्वरूप जो शाश्वत आत्म पदार्थ शुद्धात्मा है, उसको नमस्कार किया है। आत्मा अपने

शुद्धस्वरूप को नमस्कार करता है, उसकी तरफ प्रवृत्त होता है। अंतरंग स्वरूप में प्रवृत्त परिणति, परभाव में प्रवृत्त नहीं होती है। ऐसा यह अप्रतिहत मंगल है।

शुद्धात्मा सत्तास्वरूप वस्तु है, वह चित्स्वभाववाला है। चैतन्य ही उसका सर्वस्व है। अकेले चैतन्यभाव से बनी हुई आत्मसत्ता है। आत्मा के चैतन्य पिंड में राग नहीं रहता। 'राग नहीं है' ऐसा नास्तिरूप यहाँ कथन नहीं किया गया है किंतु 'चैतन्यस्वभावरूप सत्ता है' ऐसा अस्तियुक्त कथन है। 'अस्ति' रूप कथन में 'नास्ति' की अपेक्षा भी सन्निहित है।

चैतन्य गुण द्वारा चैतन्य सत्ता को लक्ष्य में ले तो निर्विकल्प दृष्टि हो जावे। जगत में अनंत पदार्थ सत्‌रूप भावरूप है, उनमें कोई चेतन है और कोई अचेतन है, उनमें नमस्कार करनेयोग्य पदार्थ कौन हैं ? समस्त पदार्थों में साररूप चेतन पदार्थ है, उससे वही नमस्कार करने योग्य है।

शुद्धात्मा को चित्स्वभाववाला बताकर उसका गुण बताया है। 'समयसार' कहने से तत्संबंधी गुण भी गर्भित हो जाते हैं। क्योंकि वस्तु और उसके गुणों की एक ही सत्ता है, कुछ भिन्न नहीं है तो भी गुण भेद बताकर समझाया जाता है क्योंकि विशेष गुण द्वारा वस्तु का स्वरूप समझाए बिना उसका सम्यग्ज्ञान नहीं होता; इसलिए आत्मा का 'चित्स्वभाव' विशेषण बताया गया है।

'समय' का सामान्यरूप से अर्थ है वस्तु; उसमें सारभूत चेतन पदार्थ जीव ही उपादेयरूप है इसलिए उसे नमस्कार किया है। शेष अन्य अचेतन पदार्थों को असाररूप जानकर उनके नमस्कार करने का निषेध किया है। ऐसा होते हुए भी व्यवहार में जिनवाणी और जिनबिम्ब आदि भी वंदनीय है, यह बात भी अन्य कलश में कही है। जिनवाणी तो सर्वज्ञ स्वभाव का अनुसरण करनेवाली है, सर्वज्ञस्वभाव नमस्कार योग्य है, उनके निमित्त से स्वभाव को दर्शानेवाली वाणी भी वंदनीय है किंतु यहाँ परमार्थ से मंगलाचरण के प्रसंग में 'नमः समयसाराय' कहने का अभिप्राय चैतन्यस्वरूप शुद्धात्म वस्तु ही नमस्करणीय है। विकल्पादि अशुद्धता भी साररूप नहीं है। इसलिये उसे भी समयसार में से निकाल डालेंगे।

पंडित श्री राजमल्लजी ने इस कलश-टीका में समयसार का भाव खोल दिया है। इस कलश-टीका को पढ़कर पंडित बनारसीदासजी भी प्रभावित हुए थे, उन्होंने लिखा है कि—

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी समयसार नाटक के मर्मी।
तिन्हें ग्रंथ की टीका कीन्हीं बालबोध सुगमकरि दीन्हीं॥

इस कलश टीका की अध्यात्मशैली से प्रभावित होकर पंडित बनारसीदासजी अन्य अनेक

साधर्मियों के साथ इसका स्वाध्याय करते थे और उसी के आधार पर उन्होंने 'समयसार नाटक' की रचना की। समयसार नाटक तो प्रसिद्ध था किंतु इस कलश टीका की प्रसिद्धि कम थी, अब यह प्रसिद्धि में आ रही है।

मंगलाचरण के रूप में समयसार को नमस्कार किया है। जगत में पदार्थ तो अनंत हैं और वे सब अपने-अपने गुण-पर्याय के वैभव युक्त हैं, स्वाधीन हैं और किसी दूसरे के आधीन नहीं हैं, तो फिर उनमें जीव पदार्थ को ही सार क्यों कहा है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि जीव में दो विशेषणों की विशेषता है—एक तो जीव के शुद्धात्मपरिणमनरूप सुख है; जगत के अन्य किसी पदार्थ में यह सुख व ज्ञान नहीं है; इसलिये जीव सारभूत है। ऐसी सुखदशा जिसे प्रकटे, वह जीव जगत में सारभूत है; इसलिये उसे नमस्कार किया। यह सुख अतीन्द्रिय सुखमय शुद्धात्मपरिणमन है। इस अतीन्द्रिय सुख की अनुभूति के परिणमन से प्रकाशित आत्मा सारभूत है, इसलिये उसे नमस्कार हो।

आत्मा का द्वितीय विशेषण 'ज्ञान' सामर्थ्य द्वारा बताया जाता है। एक समय में एक साथ समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जान लेने की शक्ति शुद्धात्मा में ही प्रकट होती है, जगत के अन्य किसी पदार्थ में ऐसी शक्ति नहीं है, इसी से शुद्धात्मा सब पदार्थों में सारभूत एवं श्रेष्ठ तथा हितकारी है; इसलिए वह नमस्करणीय है।

सार का अर्थ—हित, सुख, उत्तम, श्रेष्ठ है।

असार का अर्थ—अहित, दु:ख है।

जो आत्मा अपनी स्वानुभूति से अतीन्द्रियज्ञान और सुखरूप परिणमता है, वही आत्मा जगत में साररूप, हितरूप, सुखरूप है, श्रेष्ठ है एवं वंदनीय है। बाहरी पदार्थों से आत्मा की श्रेष्ठता नहीं है। जब चैतन्य अपने स्वानुभव से सुशोभित होता है, तब अन्य वस्तु से उसकी क्या शोभा? देखो! तीर्थंकरों का शरीर वस्त्र बिना कैसा सुशोभित होता है। ऐसे पवित्र शरीर को देखनेवाले को अपने आगे-पीछे के सात भव दिख जाते हैं। तो इस चैतन्य दर्पण के दिव्य चैतन्य तेज—जिसमें जगत के समस्त पदार्थ एक साथ झलकते हैं और जो अतीन्द्रिय आनंद की स्वानुभूति में ही मग्न रहे—की शोभा की क्या बात? यह चैतन्यरूप आत्मा ही सर्व पदार्थों में श्रेष्ठ-सारभूत है।

देखो, जगत में छह द्रव्य, उनमें पाँच तो अजीव हैं। उन अजीव पदार्थों में ज्ञान नहीं है, सुख भी नहीं है, उस अजीव को जानने से जाननेवाले को सुख भी नहीं है। सुख तो स्वानुभूति में ही है,

मात्र पर प्रकाशकत्व में सुख नहीं है। शुद्ध जीव स्वयं सुखी एवं ज्ञानरूप है और उसको जानने से जाननेवाले के भी अतीन्द्रिय सुख का स्वानुभव होता है। ऐसे सारभूत जीव को जानकर ही मंगलाचरण में नमस्कार किया गया है। यह नमस्कार अपूर्व है। इस नमस्कार का भाव जीव ने पहले कभी प्रकट नहीं किया। जब चैतन्यस्वभाव में स्वसन्मुख होकर उसको जाना; तब अतीन्द्रिय सुख स्वानुभव में आया, वह अपूर्व मंगल है। इस मांगलिक में अपूर्व स्वसन्मुखता है। स्वसन्मुखभाव में ही अतीन्द्रिय सुख और ज्ञान है; इसलिए वह सारभूत मंगल है। स्व स्वभाव की सन्मुखता बिना वास्तविक ज्ञान एवं सुख नहीं है। जिसे जानने से सम्यग्ज्ञान एवं सुख नहीं मिले, उस पदार्थ को सार कौन कहे ? सार तो उसे कहते हैं जिसको जानने से सुख और ज्ञान हो, ऐसा सारभूत पदार्थ तो आत्मा ही है। इसलिए उसे नमस्कार कर मांगलिक किया।

शुद्धात्मा को नमस्कार कैसा ?

शुद्धात्मा ज्ञान और सुखस्वभाव से परिपूर्ण है, उसे देखकर श्रद्धा-ज्ञान में लेना तथा परिणाम को उसमें तल्लीन करना शुद्धात्मा को नमस्कार है। इसप्रकार सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र द्वारा शुद्धात्मा की तरफ प्रवृत्त होनेवाला भाव मांगलिक है। ऐसे आत्मा को जाने और अतीन्द्रिय सुख का वेदन न हो, ऐसा बनता नहीं है। पर सन्मुख होकर पर को जानने से सुख नहीं है। अपनी अशुद्धता को जानने से भी ज्ञायक के सुख नहीं होता। ज्ञायक के कैसे सुख हो ? ज्ञायक जब स्वयं स्वयं को जाने तो उसे सुख हो। ऐसे सुख के पाने पर मांगलिक कहलाता है। इसप्रकार शुद्धात्मा को नमस्काररूप मांगलिक किया।

साधकत्व और सिद्ध होने की भूमिका

[फाल्गुन सुदी १ के दिन पूज्य स्वामीजी के सोनगढ़ में पधारते ही सुवर्ण धाम के रमणीय वातावरण में, साधक बनकर कैसे सिद्धपद पाता है, उसके विषय में मधुर वाणी का प्रवाह चल पड़ा... समयसार के (कलश २६९) पर हुआ अधूरा प्रवचन इसप्रकार पूर्ण किया गया....]

आज के मांगलिक में साधकत्व होकर सिद्ध होने का प्रकरण है। अनंत चैतन्यशक्तिवाले आत्मा के आश्रय से ही साधकत्व होता है। जो किसी भी प्रकार उद्यम कर मोह को दूर कर ज्ञानस्वभाव का आश्रय करता है, वही साधक बनकर सिद्ध होता है।

जिसे आत्मा का हित करना है, उसे कौन सी भूमि में रहना है ? उसे अकंप चैतन्यभूमि का आश्रय करना है। जो इसका आश्रय करता है, वही साधक संज्ञा पाता है, तत्पश्चात् ही सिद्धत्व प्रकट होता है। इस चैतन्यभूमिका के आश्रय से ही अनंत ज्ञानियों ने मोक्ष साधा है, साधते हैं और साधेंगे—यही एक मार्ग है; अन्य दूसरा मार्ग नहीं है।

भाई! तेरे तत्त्व में दो स्थितियाँ विद्यमान हैं—एक त्रिकाली तत्त्व और द्वितीय वर्तमान पर्याय। इनके सिवाय पर का कुछ भी तेरे में विद्यमान नहीं है। भाई! तुझे साधक होना है ? यदि हाँ, तो किस भूमिका के आधार से साधकत्व प्रकट होगा ? तेरी स्ववस्तु निश्चल है, वही तेरे साधकत्व के आधार हेतु दृढ़ भूमिका है। यदि पर का आधार लेने जावेगा तो तुझे पर आधार नहीं देगा। चैतन्य भूमिका के आश्रय बिना संसार भ्रमण टल नहीं सकता।

अरे! तूने अनादि से चैतन्यभूमिका का कभी आश्रय नहीं लिया। बाहर के आश्रय में तो दुःख के पुंज ही हैं, उनसे तू प्रेम कर रहा है ? स्वभाव के आश्रय में परम अचिंत्यसुख है, उसके साथ तू प्रेम और मित्रता क्यों नहीं करता ? स्वहित के लिये कुछ विचारकर—विवेक चक्षु खोल।

साधकत्व का परिणमन स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। बाह्य प्रवृत्ति के, शुभाशुभ परिणाम के आश्रय में कुछ भी साधकत्व नहीं होता। तुझे साधक बनना है क्या ? यदि हाँ, तो साधक होने योग्य क्या भूमिका है, इसका निश्चय कर। साधकत्व का तात्पर्य शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से है। आत्मा का जो ज्ञानभाव सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमता है, वह साधकभाव है और वही ज्ञान-

भाव जब पूर्णदशारूप परिणमता है, तब सिद्धत्व होता है। इसप्रकार साधकत्व एवं सिद्धत्वरूप ज्ञान ही परिणमता है। इसलिए जो ज्ञानभूमि का आश्रय करता है, वही क्रमशः साधक एवं सिद्ध होता है।

सबसे पहला कार्य

जो अपने हित की वांछा रखता हो, उसे सर्वप्रथम तत्त्वनिर्णयरूप कार्य करना योग्य है। 'मैं चिद्रूप ज्ञानानंदस्वरूप हूँ, उससे भिन्न अन्य कोई भाव या द्रव्य—वह मेरा स्वरूप नहीं है'—ऐसा तत्त्वनिर्णय स्वाधीनरूप से हो सकता है; उसके लिये किसी अन्य की आधीनता नहीं करनी पड़ती और उस तत्त्वनिर्णय का फल महान है।

ऐसी मनुष्य पर्याय प्राप्त करके भी जो तत्त्वनिर्णय की दरकार नहीं करते, उन्हें अभी भवभ्रमण का भय नहीं लगा है... दुर्लभ मनुष्यपने में प्राप्त हुई बुद्धि को वे व्यर्थ गँवा रहे हैं। बुद्धिमान पुरुषों को अपनी बुद्धि तत्त्वनिर्णय में लगाना योग्य है। दूसरे कार्य करना आता हो या नहीं आता हो, परंतु चैतन्यतत्त्व के निर्णय का कार्य तो सर्व उद्यम से अवश्य करना योग्य है।

[रत्नसंग्रह (गुजराती) से]

स्वसंवेदन

★★★

[स्वसंवेदनज्ञानी अन्तरात्मा की अलौकिक वीतरागी महिमा का इसमें सुंदर वर्णन है। अहा! विलक्षण धर्मात्मा को स्वसंवेदन में आनंद की धारा उछलती है। आत्मा स्वयं राग बिना का आनंदस्वभावी है, इसलिये उसका संवेदन भी उसी जाति का है। परमात्मा की विशिष्टता को अपने में प्रकट किये बिना परमात्मा का वास्तविक स्वरूप जाना नहीं जा सकता। स्वसंवेदन के बल से ज्ञानी अपने चैतन्यस्वभाव में बाह्य भावों को तनिक भी प्रवेश नहीं करने देता—ऐसा स्वसंवेदन धर्म है, मोक्षमार्ग है, उसी में शांति है, उसमें परमानंद है। स्वसंवेदन कहो अथवा शुद्धात्मा की अनुभूति कहो—इसी को संतों ने जैनशासन का सार कहा है। हे जीव! उसी में अपने भाव लगा।]

★★★

(परमात्मप्रकाश के प्रवचन से)

जिसे संसारदुःखों से मुक्त होने की और मोक्षसुख प्राप्त करने की अभिलाषा है, ऐसे (भट्ट प्रभाकर जैसे) शिष्य ने विनय से पूछा है कि हे स्वामी! मुझे ऐसा परमात्मस्वरूप कृपा कर बतावो कि जिसे जानकर मेरे अनादि के इस दुःख का नाश हो और मुझे परम आनन्द की प्राप्ति हो। उसके उत्तर में श्रीगुरु उसे परम अनुग्रह से प्रसन्नतापूर्वक परमात्मस्वरूप समझाते हैं।

हे वत्स! बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—ऐसे तीन आत्माओं को जानकर तू शीघ्र मूढ़तारूप बहिरात्मस्वरूप को छोड़ और अंतरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान कर। आत्मा के परमात्मस्वभाव को स्वसंवेदनज्ञान से जानने पर अंतरात्मस्वरूपता प्राप्त होती है। केवलज्ञान से परिपूर्ण जो परमात्मस्वभाव है, वह वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान से जाना जाता है।

स्वसंवेदनरूप आत्मज्ञान को 'वीतराग' कैसे कहा? क्योंकि ज्ञान में बाह्य इन्द्रिय विषयों का जो संवेदन है, वह तो सराग है और अंतर्मुख होकर आत्मा का अनुभव करनेवाला ज्ञान तो राग का अभावरूप है; इसलिये उसका 'वीतराग' विशेषण उचित ही है। चौथे गुणस्थान में अविरतसम्यग्दृष्टि का जो जितना अंश स्वसंवेदनज्ञान है, वह भी रागरहित वीतराग है। चौथे गुणस्थान में राग तो होता है न?—तो कहते हैं कि स्वसंवेदनज्ञान में राग का अभाव है। स्वसन्मुख हुए ज्ञान में राग का वेदन-अनुभव नहीं है। इसमें तो वीतरागी आनंद का ही वेदन-अनुभव है। अज्ञानी को एकाकी परलक्षीज्ञान होता है, उसमें उसे राग का ही वेदन होता है। ज्ञानी को स्वसन्मुख

हुए उपयोग में राग के वेदन का अभाव है; इसलिये वह स्वसंवेदन वीतराग है। चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ करके जैसे-जैसे स्वसंवेदन बढ़ता जाता है, उसी-उसी रूप में वीतरागता भी बढ़ती जाती है।

ज्ञान अंतर्मुख होकर अपने स्वभाव में लगे, तब उसमें राग नहीं आता; स्वभाव में एकाग्र हुए ज्ञान में तो वीतरागी चैतन्यरस का ही वेदन है। ऐसा स्वसंवेदन हो, तभी आत्मा को सम्यक्रूप से जाना, ऐसा कहलाता है और तब ही अंतरात्मस्वरूपता होती है। बाह्यवस्तु के जानने में ही जिसका ज्ञान अटका है, वह बहिरात्मा है और उसका ज्ञान, राग से दूषित है। उसमें कषाय का वेदन है। ज्ञान अंदर में आया, तब वीतराग हुआ; ज्ञान बाहर गया, वहाँ सराग हुआ। जिसका ज्ञान स्व को भूलकर अकेले पर को देखने में और राग का ही तन्मयस्वरूप में वेदन करने में अटका है, वह बहिरात्मा है, उस बहिरात्मा को मूढ़भाव होता है। हे जीव! ऐसे बहिरात्मस्वरूप को पहिचान कर उसे तू छोड़ और अंतरात्मपना महिमावंत है, उसे तू प्रकट कर।

अनादि से तू बाह्य में फँसा हुआ है, उसमें तो 'धूप में मछली तड़पे' इसप्रकार है। उसमें कहीं शांति नहीं है। आत्मा का उपयोग उपयोग में ही रहे—अर्थात् निजस्वरूप में ही रहे—उसी में शांति का वेदन है। शांति का समुद्र आया है; उसमें डुबकी मारने पर आनंद का संवेदन होता है और उसमें राग की आकुलता का अनुभव नहीं होता। इसलिये स्वरूप में डुबकी लगानेवाला स्वसंवेदन ज्ञान वीतराग है, आनंदरूप है। चौथे गुणस्थान में जो अंतरात्मा हुआ, उसे ऐसे वीतराग आनंद का संवेदन होता है। अहा, अंतरात्मा की क्या दशा है, उसकी भी पहिचान जगत को परमदुर्लभ है।

चौथे और पाँचवें गुणस्थान में राग तो होता है परंतु वहाँ जो स्वसंवेदन होता है, वह कोई सराग नहीं होता; वह स्वसंवेदन तो रागरहित ही है। इसप्रकार स्वसंवेदन तो सर्वत्र वीतराग ही है। चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषायों का जितना अभाव है, उतना तो राग वगैर का वीतरागभाव है, उतनी शुद्धता है, उतना मोक्षमार्ग है, उतना निश्चय है। जितना राग शेष रहा, उतनी अशुद्धता है। वह मोक्षमार्ग नहीं है, वह स्वसंवेदनरूप ज्ञान से भिन्न है। ऐसी अंतरात्मा की स्थिति है।

आनंदस्वरूप आत्मा है, उसके स्वभाव में ही देव-गुरु और तीर्थ सब समाए हें। देव अर्थात् सर्वज्ञपद आत्मा से कोई भिन्न नहीं है। गुरु अर्थात् साधकपद, वह आत्मा से कोई भिन्न नहीं है; और तीर्थ अर्थात् रत्नत्रय धर्म, वह भी आत्मा से भिन्न नहीं है। आत्मा का ऐसा अनुभव वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान से ही होता है; आत्मा के संवेदन में राग का अभाव है। असंख्यप्रदेशी चैतन्य घट

अमृतरस से भरा है। वीतरागी आनंद से भरे चैतन्यकलश का आस्वाद लेनेवाला ज्ञान भी वीतराग है। चौथे गुणस्थान में भी जितना स्वसंवेदन है, उतना वीतरागभाव है। ऐसे वीतराग अंश के बिना धर्म की शुरुआत नहीं होती।

जितने महान गुण जगत में हैं, उन सभी गुणों से यह आत्मा परिपूर्ण है; इसप्रकार की प्रभुता से परिपूर्ण अपने ईश्वर में स्वसन्मुख होने पर ज्ञान बीज उगता है; भेदज्ञानरूप बीज का प्रकाश चौथे गुणस्थान में हुआ है। पश्चात् गुणस्थान के अनुसार स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागभाव बढ़ता जाता है; शांति और आनंद का वेदन भी बढ़ता जाता है।

सर्वार्थसिद्धि देवलोक के संयोग में रहनेवाला सम्यग्दृष्टि जो आत्मिक शांति अनुभवता है, पंचमगुणस्थानवर्ती तिर्यंच श्रावक उससे भी अनंतगुणी आत्मिक शांति अनुभवता है; और निष्परिग्रही मुनिराज छट्ठे-सातवें गुणस्थान में इससे भी अनंतगुनी आत्मिक शांति अनुभवते हैं। और सर्वज्ञ परमात्मा के पूर्णानंद की तो बात ही क्या! ऐसी शांति का अनुभव, वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान द्वारा ही होता है। आत्मा के संवेदन में वीतरागता की गर्जना होती है; बाह्य में आत्मा की गर्जना हो—ऐसा नहीं हो सकता। तेरी गर्जना तेरे में, तेरा प्रभाव तेरे में; तेरे में आनंद से भरा चैतन्यप्रवाह बहता है, उसमें जितना एकाग्र हो, उतनी तुझे शांति। आत्मा जब शुद्धोपयोग की श्रेणी में चढ़ती है, तब आनंद की धारा उछलती है। चौथे गुणस्थान से जितनी शुद्धता होती है, उतनी आनंद की धारा बहती है। राग का जिसमें संसर्ग नहीं है, ऐसे स्वसंवेदन द्वारा ही आत्मा पहिचानी जाती है और आनंद का अनुभव होता है।

राग से पार होकर अतीन्द्रियस्वभाव में झुककर जो आत्मा को जानता है कि 'जो यह स्वसंवेदन है, वह मैं हूँ'—ऐसा जाननेवाला ज्ञान, राग वगैर का है। पर की ओर झुककर पर को जाननेवाला ज्ञान तो रागसहित है और रागसहित ज्ञान, आत्मा का स्वसंवेदन कर नहीं सकता। आत्मा स्वयं रागरहित स्वभाववाला है; इसलिये उसका स्वसंवेदनज्ञान भी उसी जाति का है। ऐसा स्वसंवेदन जिसे हुआ, वह अंतरात्मा है; वह परमात्मा को जानता है और देहबुद्धिरूप बहिरात्मा को छोड़ता है।

बहिरात्मा का स्वरूप पहिचानकर वह छोड़ने लायक है; कैसा है बहिरात्मा? देहादि बाह्य पदार्थों में अथवा रागादि बहिर्भावों में आत्मबुद्धि करनेवाला बहिरात्मा है; वह भिन्न आत्मस्वरूप को नहीं देखता और बाह्य भावों में ही आत्मबुद्धि होने के कारण अटका रहता है। उसको यहाँ मूढ़ कहा

है और अंतरात्मा को विचक्षण कहा है। तथा परमात्मा तो ब्रह्मरूप, केवलज्ञानरूप है। अपने चैतन्यभाव में बाह्यभावों को तनिक भी प्रवेश नहीं करने देता—यह अंतरात्मा की विचक्षणता है। अज्ञानी परभावों में भी अपनत्व मानकर प्रवर्तता है, वह मूढ़ता है। मिथ्यात्वरूप से जो परिणमे, वह मूढ़, वह बहिरात्मा; और वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनरूप ज्ञान द्वारा आनंदरूप जो परिणमा, वह विचक्षण; वह अंतरात्मा; वह धर्मात्मा। उस अंतरात्मस्वरूप में परमात्मस्वरूपता की सिद्धि होती है।

* अंतर में देहादि से भिन्न आत्मा जिसने जाना, वह अंतरात्मा है।

* आत्मा का पूर्ण शुद्धस्वरूप जिसे प्रकटा, वह परमात्मा है।

* आत्मा को भूलकर बाह्य में—देहादि में जो आत्मबुद्धि करे, वह बहिरात्मा है।

चौथा गुणस्थानवाला जीव अंतरात्मा है, पंडित है; सम्यग्दर्शनरूप निर्विकल्प समाधि को उसने प्राप्त किया है। परमात्मा का नमूना इसमें आ गया है। परमात्मा का नमूना अपने में बिना आए परमात्मा का स्वरूप वास्तविकरूप से नहीं जाना जा सकता। अपने स्वसंवेदन से परमात्मस्वरूप का ज्ञान हुआ, तब ही परमात्मा की सच्ची पहिचान हुई। ऐसा परमात्मस्वरूप इन्द्रियाजीत स्वसंवेदन से ही जानने में आता है। शास्त्र के शब्दों से अथवा उन शब्दों के ज्ञान से आत्मा अनुभव में नहीं आता, परंतु ज्ञान को आत्मा की तरफ लगाकर ही, आत्मा के ध्यान से ही आत्मा जानी जाती है। संयोग में सुख बुद्धिवाला जीव असंयोगी आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता। सभी दृष्टियों से परिपूर्ण आत्मस्वभाव, निर्विकल्पदृष्टि और निर्विकल्प आनंद के संवेदन से ही श्रद्धा में-ज्ञान में-अनुभव में आता है।

अहा, चैतन्य के आनंद की मिठास! उसका स्वाद जिसने लिया, उसे जगत के विषयों की मिठास कैसे रहे? आत्मा को जानने का उपाय राग से अथवा विषयों से पार है; अकेला ज्ञानमय हो, तभी ज्ञानमय आत्मा अनुभव में आती है—ऐसा समझकर, हे जीवो! चिद्रूप में ही तुम्हारा परिणाम-भाव लगावो।

जिसे चैतन्य का प्रेम हो, उसे इसके विरोधी राग का प्रेम कैसे हो?—नहीं हो। जिसे राग का प्रेम हो, उसे बाह्यविषयों का भी प्रेम हो क्योंकि राग का फल तो बाह्य विषय ही हैं। अंतर का विषय जो संपूर्ण आत्मा है, वह राग का विषय नहीं हो सकता, अतीन्द्रियज्ञान का विषय ही वह होता है।

आत्मा में सुख है, ऐसा निश्चय सही-सही किसे होता है? कि बाह्य में, इन्द्रपद में भी सुख जिसे नहीं लगे, इन्द्रपद का कारणरूप जो राग है, उसमें जिसे सुख नहीं लगता, उसे।

अकेला आत्मा अर्थात् विषयों से और राग से पार ऐसा अकेला ज्ञानमय आत्मा सर्वथा

स्वरूप से पूर्ण है, वही स्वाधीन सुखरूप है; उस अकेले का अनुभव भी अकेला हो (राग से पार होकर) ही होता है। इसलिये स्वयं को (अपने को) स्वयं के ही (अपने ही) सामने देखना है—यही शुरुआत करने का सरल और सीधा उपाय है।

इस देहरूपी देवालय में विराजमान चैतन्य प्रभु आत्मा में, और सिद्धालय में विराजमान सिद्ध प्रभु; इन दोनों में वास्तविक दृष्टि से कोई फर्क नहीं है। अतएव अपना स्वद्रव्य ही अपने को उपादेय है। **जैसे सिद्ध वैसे ही तू; सिद्धसदृश तेरी शुद्धात्मा का ही ध्यान करना तुझे उचित है।—यही शास्त्र का सागर है।**

जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहिं कोई।
लक्ष बनाने उसी को... कहा शास्त्र सुखदाई॥

(श्रीमद् राजचन्द्र)

रे जीव! सिद्ध भगवान में और अपनी आत्मा में जरा भी भेद न कर। सिद्ध की तुलना में तेरी आत्मा में जरा भी अधूरापन नहीं है। समस्त संसार से रहित अकेला तू स्वयं ही ज्ञान से-दर्शन से-सुख से और प्रभुता से परिपूर्ण है। उसमें ही अवलोकन कर। जिस प्रकार गुड़ किसे कहा जाये? कि जो मीठे का पिण्ड वह गुड़; उसीप्रकार आत्मा किसे कहना? कि ज्ञान और आनंद का जो पिण्ड, वह आत्मा। इसी आत्मा को ध्येय बनाना, ऐसा उपदेश है। सभी महापुरुष ऐसे निज आत्मा को ध्येय बना-बनाकर ही महान हुए हैं। तू भी स्वसंवेदन में उसको ही उपादेय बना। स्वसंवेदन द्वारा इसको देखते ही तेरे सब दु:ख दूर होंगे और कोई अचिंत्य परम आनंद तुझे अनुभव में आएगा।

★

धर्मध्यानरूपी सुधा समुद्र में डुबकी लगा

हे आत्मन्! तू आत्मा के प्रयोजन को अंगीकार कर अर्थात् अन्य प्रयोजनों को छोड़कर केवल आत्मा के ही प्रयोजन का आश्रय कर तथा मोहरूपी बीहड़ जंगल को छोड़। भेदज्ञानरूप विवेक को अपना मित्र बना। संसार-देह-भोगों से विरक्त होकर वैराग्य को भज। परमार्थ से शरीर और आत्मा में जो भिन्नता है, उसका निश्चितरूप से चिंतवन कर। इसप्रकार धर्म-ध्यानरूपी सुधा समुद्र में गहरा उतरकर अनंत सुख स्वभाव से विकसित मुक्ति का मुख कमल देख।

(ज्ञानार्णव, ४२-२)

अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति हेतु संतों का उपदेश

[परमात्मप्रकाशक के प्रवचन में से]

★★★

अरे जीव! एक बार अपनी आत्मा की वास्तविक कीमत समझकर अपने में अंतर्मुख हो। तुझे जगत के पदार्थ अच्छे लगते हैं परंतु सबसे उत्तम तो तेरा आत्मा ही है—इसी को अच्छी तरह लगा... इसी को सारभूत समझ। जिस आनंद को तू बाहर खोज रहा है, वह तुझे अपने में ही मिलेगा। मेरी शुद्ध आत्मा को छोड़कर अन्य कोई इस जगत में मुझे उपादेय नहीं है—इसप्रकार आत्मा को ही उपादेय बनाकर एकबार स्वानुभूति द्वारा उसमें प्रवेश कर; तो तुझे परम आनंद का अनुभव होगा।

★★★

जन्म-मरणरहित आत्मा अपने को भूलकर संसार में जन्म-मरण कर रही है। शुद्ध आत्मस्वभाव तो जन्म-मरण बिना का है। वह न तो कर्मों के अनुसार उत्पन्न होता है अथवा मरता है और न ही स्वयं कर्मों को उत्पन्न करता है; अपितु वह अपने निर्मल, ज्ञानादिभावों के उत्पाद-व्ययरूप परिणमता है। संयोग से और संयोगी भावों से (अर्थात् पर से और परभावों से) तो शुद्ध आत्मा त्रिकाल पृथक् है; इसे संयोग का कोई हर्ष नहीं है, शोक नहीं है, प्रसन्नता नहीं है और खेद खिन्नपना भी नहीं है। यह तो पर से परम उदासीन है। उदासीनता में वीतरागता है, आनंद है, ज्ञान है; परंतु उदासीनता में राग-द्वेष नहीं है, शोक-हर्ष नहीं है। राग के आसन से ऊँचा (अलग) चैतन्य आसन है। उसमें जो विराजमान हुआ, वह ही सच्चा उदासीन है। ऐसा ही आत्मा का स्वभाव है।

अरे जीव! एक बार अपने ऐसे स्वभाव का सच्चा माप तो कर। तू चैतन्यपिंड, सर्वज्ञता की सामर्थ्य से भरपूर (ऐसे) महिमावंत निजस्वभाव को भूलकर राग-द्वेष जैसी तुच्छ वृत्ति में अटक गया है और देहादि के ममत्व के कारण देह धारण कर करके चार गति में जन्म-मरण कर रहा है। अशरीरी चैतन्य को ऐसी देह धारण करनी पड़े, यह लज्जा की बात है। अरे, राग के साथ भी जिसका कार्य-कारण भाव पारमार्थिक रूप से नहीं है, उसका तो इस जड़ देह के साथ क्या संबंध? पर से उदासीन होकर इसप्रकार के अपने आत्मस्वरूप को ध्येय बनाकर अनुभव में ले तो सम्यग्दर्शन होवे।

जहाँ अनंत सुख भरा है और दुःख का नाम भी नहीं है—ऐसा तेरा चैतन्यतत्त्व—उसके

अंतर में जा, और उसके साथ मित्रता कर। बाहर की कोई प्रतिकूलता जिसे दु:ख नहीं दे सकती और जिसमें उतरते ही अनंत सुख मिले, ऐसे चैतन्य की प्रीति तू क्यों नहीं करता ? और बाहर के संयोग से प्रेम कर और उसके साथ मित्रता कर-करके अपने आत्मतत्त्व को तू कैसे भूल रहा है ? उसमें तो अनंत दु:ख हैं। भाई ! अपने स्वरूप का विचार तो कर ! तेरी चैतन्यधाम की सम्पदा की अपार महिमा का वर्णन केवली भगवान ने किया है। अरे, एकबार तू तुलना तो कर कि कहाँ सुख है और कहाँ दु:ख है ? मेरे स्वरूप में अनंत सुख और बाहर के संयोग में किंचित् सुख नहीं, इसप्रकार न्याय-नेत्रों को खोलकर, सम्यग्ज्ञान को प्रकट कर-तू विवेक कर... और इस बाह्यवृत्ति की प्रवृत्ति को जलाकर चैतन्यसुख में प्रवृत्त हो। भाई, अब तू गंभीर हो... तू चतुर हो—विवेकी होकर अपनी आत्मा को संभाल। पिता जैसे पुत्र को सीख देता है, उसीप्रकार यहाँ संत सीख देते हैं कि हे वत्स ! संसार चक्र में तू बहुत-बहुत मारा फिरा; अब तो तू विवेकी हो.. विवेकी और गंभीर होकर अब तो तू अपने कार्य को संभाल। तेरा सुखधाम अंतर में है, उसमें तू प्रवेश कर।

सिद्ध भगवान का जैसा निरुपाधिस्वरूप है, ऐसा तेरा स्वरूप तुझको उपादेय है; परभाव की उपाधिरहित अपने स्वरूप को तू जान। ज्ञानादि अनंत गुण-जितने सिद्ध प्रभु में हैं, उतने ही तुझमें सदा उपस्थित हैं। जहाँ भी जा, वहीं तेरे समस्त गुण तेरे साथ ही हैं और वे गुण अपनी-अपनी पर्यायरूप में परिणमते रहते हैं। तेरी आत्मा तेरे गुण-पर्यायवाली है; परंतु तेरी आत्मा शरीरवाली नहीं है, संयोगवाली नहीं है। अतएव तेरे गुण-पर्यायों का कार्य बाहर में नहीं है, कि बाहर से वह आता नहीं है। तुझमें ही तेरा सर्वस्व है। इसलिये अपने में ही तू देख। तेरा शुद्ध-गुण-पर्यायवाला आत्मा ही उपादेय है। केवलज्ञान और सिद्धपर्याय प्रकटे, ऐसी सामर्थ्य तुझमें ही है। ऐसी सामर्थ्यवाले अपने स्वद्रव्य को प्रतीति में-ज्ञान में-अनुभव में लेकर उपादेय बना, यह तात्पर्य है।

'गुणपर्ययवत् द्रव्यम्' ऐसा सिद्धांत में कहा है, इसलिये जहाँ प्रत्येक द्रव्य स्वत: ही अपनी गुणपर्यायवाला है, वहाँ उसके गुणपर्याय में दूसरा क्या करे ? चेतन अथवा जड़ समस्त पदार्थ निजस्वभाव से ही गुणपर्यायरूप हैं; उसमें ऐसा कहाँ आया कि दूसरा होय, तभी उनके गुणपर्याय हों ? अन्य से इनके गुणपर्याय में कुछ होता है, ऐसी जिसकी मान्यता हो, उसने सच्ची रीति से द्रव्य को 'गुणपर्यायवत्' जाना ही नहीं है। द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तु को ही जो नहीं जानता वह कारण-कार्य को, उपादान-निमित्त को अथवा निश्चय-व्यवहार को भी सच्चे स्वरूप में नहीं जान सकता।

वस्तु की मर्यादा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में ही है। द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप पहिचान लेने पर स्व-पर की भिन्न-भिन्न मर्यादा समझ में आती है। इसलिये मेरे से अन्य में कुछ हुआ कि पर से मेरे में कुछ हुआ—ऐसी पराश्रित मिथ्याबुद्धि नहीं रहती; अपने स्वद्रव्य का आश्रय करने से सम्यक्त्वादिरूप परिणमन होता है, अर्थात् मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति के हेतु यह उपदेश है, कर्म की और राग-द्वेष की परंपरा अनादि काल से चली आती है परंतु जो शुद्धनय के द्वारा आत्मा का स्वरूप अनुभव में आवे तो वह परम्परा टूट जाती है और अतीन्द्रिय आनंद की परम्परा चालू हो जाती है। शुद्धनिश्चय से आत्मा में राग-द्वेष नहीं है, यह तो निर्मल ज्ञानदर्शनस्वभाव है। ऐसे आत्मा के स्वसंवेदन से ही अतीन्द्रिय आनंद होता है, अतएव वही उपादेय है।

पर्याय में राग-द्वेष होता है और कर्म का संग है—इसका व्यवहार से ज्ञान करवाया। परंतु वह कोई उपादेय नहीं है। उपादेय तो बंधन बिना का स्वभाव, कि जिसके अनुभव से आनंद हो—वह ही है। निर्विकल्प वीतराग आनंदस्वरूप आत्मा है—उसके स्वसंवेदन के अभाव में आत्मा राग-द्वेषरूप परिणमती है और शुद्धस्वरूप के अनुभव से वह राग-द्वेष नष्ट होकर आनंद और वीतरागभाव प्रगट होता है। ऐसी वीतरागी अनुभूति में धर्मी को आनंद के साथ तन्मय (ऐसा) शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।

शुद्ध आत्मा की अनुभूति धर्म है और वह कर्म के नाश का कारण है। ऐसी अनुभूति जिसे नहीं है, वह जीव अज्ञानभाव से कर्मों को बाँधता है। वीतरागी अनुभूति से भिन्न (ऐसे) जो विषय-कषायों के परिणाम हैं, वे उपादेय नहीं हैं; उन विषय-कषायों से रहित जो निर्विकल्प वीतराग शुद्धात्म-अनुभूति है, वही आराधने योग्य है। वीतरागी अनुभूति में अपना आत्मा ही आराध्य है। चैतन्यस्वरूपी निजात्मा से बाहर का जो कोई परद्रव्य है, उसकी ओर के झुकाव से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है और उससे चार गति में भ्रमण होता है। यह शुद्ध आत्मा निश्चय से राग-द्वेष से भिन्न है, इन्द्रियों से और बाह्य पदार्थों से भिन्न है, कर्म से और चारगति से भिन्न है; इसीलिये ये समस्त परभाव त्याग करनेयोग्य हैं। अंतर की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप अनुभूति में शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। जिसे ऐसी अनुभूति का रंग नहीं है, वह राग से रंग जाता है।

अरे जीव! एक बार आत्मा में अनुभूति का रंग चढ़ा। अनुभूति का रंग जिसे चढ़े, उसके विषय-कषायों का रंग उड़ जाये; क्योंकि शुद्ध अनुभूति राग के रंग से रहित होती है। ऐसी अनुभूति

का रंग चढ़े बिना सम्यग्दर्शनादि धर्म नहीं होता, और चार गति भ्रमण के घोर दुःखों से आत्मा का छुटकारा नहीं होता। अहा! अनुभूति तो परम आनंदरूप है, महासुखरूप है, इसे भूलकर जीव घोर दुःख भोग रहा है।

अहा, आत्मा की अनुभूति कुछ अचिंत्य है। जिस अनुभूति के स्वरूप को सुनने के लिये स्वर्ग के देव और इन्द्र भी इस मनुष्यलोक में भगवान की सभा में आते हैं, उस अनुभूति की महिमा का क्या कहना!! एक क्षण की अनुभूति समस्त कर्मों को भस्म कर डालती है। ऐसी अनुभूतिवाला जीव ही जगत में सुखी है। अनुभूति वगैर के समस्त जीव दुःखी-दुःखी ही हैं, फिर चाहे वह महान राजा हो या देव हो। सुख तो आत्मा में है, उसकी अनुभूति जिसे है, वही सुखी है। भाई! तू अनादि से दुःख का अनुभव कर रहा है; यह दुःख कोई तेरे स्वभाव में भरा हुआ नहीं है, तेरे स्वभाव में तो सुख ही भरा है—इस स्वभाव में अनुभूति द्वारा प्रवेश करे तो तेरी चैतन्य-खान में से आनंद और सुख ही तुझे अनुभव में आएगा। अतएव स्वानुभूति द्वारा ऐसा आत्मस्वभाव ही उपादेय है, इसी में शांति है; अन्यत्र कहीं भी शांति-सुख या आनंद नहीं है और दूसरा कोई उपादेय नहीं है।—इसप्रकार हे शिष्य! तू जान.. और अपनी आत्मा का ध्यान कर.. इसप्रकार अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति हेतु संतों का उपदेश है।

●●●

भव-तन भोग से विरक्त हो...

ध्यान द्वारा चैतन्यदेव की आराधना कर

★★

वर्तमान में परमात्मप्रकाश के प्रवचनों द्वारा परमात्मतत्त्व की भावना का मंथन और मनन चल रहा है। हे भाई! ये भव दुःख तुझे प्यारे न लगते हों और स्वभाव सुख का अनुभव तू चाहता हो, तो अपने ध्येय की दिशा पलट दे; जगत से उदास होकर अंतर में चैतन्य का ध्यान करने पर तुझमें परमानंद प्रकट होगा और भव की जंजीरें क्षण में टूट जाऐंगी। परम आराध्य ऐसा चैतन्यदेव तेरे अंतर में ही विराज रहा है।

★★

इस जीव को अज्ञान के कारण जो संसार भ्रमण है, उस भ्रमण का दुःख कैसे मिटाया जा सके और आत्मा का सुख कैसे प्रकट हो—ऐसा पूछनेवाले शिष्य को परमात्मप्रकाश में उसका उपाय बतलाया है। हे जीव! इस संसार की चारों गतियों के भव से, तन से और भोग से उदास होकर अंतर में अपनी शुद्धात्मा का तू ध्यान कर; इसका ध्यान करने पर इस संसार दुःख की जंजीरें एक क्षण में टूट जाएँगी।

भव-तणु-भोय-विरत्तमणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ॥३२॥

आत्मस्वरूप की तुझे प्राप्ति करनी हो और इस भव दुःख से छूटना हो तो हे जीव! तू भव-तन-भोग से विरक्तचित्त होकर आत्मा का ध्यान कर; देख! पूजा में भी भगवान की दीक्षा के वर्णन में 'भव-तन-भोग से विरक्त' यह बात आयी है। बाह्य भोगादि में जिसका चित्त उदासीन न हो, वह अपनी आत्मा में चित्त को कहाँ से लगावे? भाई, तुझे यह भवदुःख प्यारा न लगता हो और स्वभावसुख का अनुभव तू चाहता हो तो अपने ध्येय की दिशा पलट दे। भव से पार ऐसे आनंदस्वरूप, तन से रहित ऐसे अरूपी और बाह्य भोगों से पार ऐसे अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर, (ऐसी) तेरी आत्मा की प्रीति-रुचि-महिमा प्रकट कर और इससे विरुद्ध जो भव-तन-भोग हैं, उनसे अपने मन को विरक्त कर। बाह्य से मन विरक्त कैसे हो? कि अंतर में उपयोग लगावे तो; और अंतर में उपयोग कैसे लगे?—बाह्य से विरक्त हो तभी।—ये दोनों एक साथ हैं; जहाँ एक की

अस्ति, वहाँ दूसरे की नास्ति। स्वभाव की प्रीति जगी, वहाँ भव-तन-भोग से विरक्ति हुई। जगत् से उदास होकर, चैतन्य की प्रीति करके, उसका ध्यान करने पर किसी परमानंद का अनुभव होता है और तुरंत संसार की विषवेल टूट जाती है। स्वभाव में ताकत है कि विकार का वंश निर्वंश कर डाले।

भव-भोग-तन-वैराग्य धार...

'भव तन भोग अनित्य विचारा... इम मन धार तपे तप धारा'

अहा, तीर्थंकर जैसों ने भी भव-तन-भोग को अनित्य ज्ञान, क्षण में छोड़कर चैतन्यस्वरूप की सिद्धि के लिये वन में वे चले गए। तीर्थंकर भी भव से डरकर इससे दूर भागे और एकाकी होकर, असंग होकर, वन में चैतन्यध्यान में मग्न हो गये। अतएव हे जीव! भव-तन-भोग से तू विरक्त हो.. और चैतन्यस्वरूप को ध्या। यही सुख के अनुभव का उपाय है।

आँख खोल... तुझे भगवान दीखेंगे।

इस शरीर को तो 'भवमूर्ति' कहा है, यह तो भव की मूर्ति है और भगवान आत्मा मोक्ष का धाम है। शरीर तो अशुचिधाम है और आत्मा पवित्रधाम है। शरीर तो परमाणुओं का पुंज है, और आत्मा तो अनंत गुणों का पुंज परमात्मा है—इसप्रकार आत्मा, देह से अत्यंत भिन्न है। कोई कहे कि हमें देह वगैर का आत्मा दिखाओ? तो कहते हैं कि भाई, इसी समय देह वगैर की आत्मा अंतर में विराज रही है, परंतु देखने के लिये तू अपनी आँख खोल तब न? सूर्य जगमगाता उगा परंतु अन्धा कहाँ से देखे? उसीप्रकार यह देह जहाँ है, वहीं आनंदमूर्ति आत्मा विराज रहा है, परंतु ध्यान वगैर वह दिखलाई नहीं देता। भाई, अपनी ध्यानरूपी आँखें खोल, वहाँ तुझे भगवान दीखेंगे। नजर रखे शरीर पर और कहे कि आत्मा दिखलाई नहीं देता—परंतु कहाँ से दिखाई दे? आत्मा की तरफ नजर करे, तभी दिखलाई दे ना? एकबार बाहर से नजर हटाकर अंतर में नजर कर तो परम आदरणीय परमात्मा तेरे में ही है, ऐसा तुझे दिखलाई देगा, बाहर देखेगा तो नहीं दिखलाई देगा।

आराध्यदेव की अगाध महिमा

अरे, चैतन्य द्रव्य... तेरी अगाध महिमा की जीवों को खबर नहीं है। महापवित्र और आराधने योग्य ऐसा आत्मदेव स्वयं ही है। आत्मदेव की आराधना करने से पंचपरमेष्ठीपद प्रकट हो जाता है। परमेष्ठीपद का भंडार चैतन्य कोष में भरा है, उसका ख्याल आवे तो उसकी महिमा मालूम हो और उसमें एकाग्रता हो... और तब आनंद का संवेदन प्रकटे।

चैतन्य की रुचि में मोक्ष का बीज पड़ा है।
विकार की रुचि में अनंतभव के बीज पड़े हैं॥

आराध्य (ऐसे) आत्मदेव की आराधना करने से आत्मा स्वयं आराध्य-परमात्मा बन जाता है। ऐसा जानकर, हे भाई! शुद्धभाव के द्वारा आत्मदेव की आराधना कर।

देह और आत्मा

अरे, देह से भिन्न यह चैतन्यदेव, (वह) देह से स्पर्शन करता ही नहीं है। अपने चैतन्यदेव की आराधना छोड़कर जड़ देह में मूर्छित हो गया। जिससे नई-नई देह धारण कर-कर संसार में भटका, तथापि वह देह से अलिप्त ही रहा है; अपने स्वरूप को कभी छोड़ा नहीं है।

स्वानुभूति

अनादि से जीव को जिस विकार-आकुलता का-दुःख का ही वेदन था; उससे भिन्न होकर, आत्मा की स्वानुभूति से जब आनंद का-निराकुल शांति का संवेदन अनुभव हुआ, तब सम्यग्दर्शन हुआ; तब पहिला गुणस्थान छोड़कर जीव चौथे गुणस्थान में आया, और तब ही धर्म की और मोक्षमार्ग की शुरुआत हुई।

कायारूपी कीचड़ में अलिप्त चैतन्यकमल

स्वानुभूति में तो आत्मा, राग का भी स्पर्श नहीं करता; आनंद का ही स्पर्श करता है—अनुभव करता है, अहा! चैतन्यभाव, राग का भी स्पर्श नहीं करता तो जड़ शरीर का स्पर्श कैसे कर सकता है? तीनों कालों में अमूर्त आत्मा ने मूर्त शरीर का कभी स्पर्श नहीं किया, कभी एकमेक हुआ नहीं। आत्मा रहता है कहाँ? कि देह में; परंतु निश्चयदृष्टि से अपने चैतन्य शरीर में रहनेवाला यह आत्मा, देह को छुआ नहीं है; उसीप्रकार देह के रजकण भी आत्मा को छुए नहीं हैं। अस्पर्शी आत्मा को जड़ कैसे छू सकता है। जैसे कमल-पत्र कहाँ रहता है? कि पानी में; और फिर भी वह कमलपत्र पानी को छुआ नहीं है, पानी से वह अलिप्त ही है; उसीप्रकार चैतन्यकमल, कायारूपी कीचड़ के बीच रहने पर भी वह कायारूपी कीचड़ से लिपटा नहीं है। जड़ काया का एक अंश भी चैतन्य में कहीं पर प्रविष्ट नहीं हुआ है। अहा, कितनी स्पष्ट भिन्नता! ऐसी भिन्नता कौन देखे? कि जो जीव संयोगदृष्टि का चश्मा उतारकर असंयोगी स्वभाव की दृष्टि से देखे, उसे अपने अंतर में चैतन्यतत्त्व देह से भिन्न खिला हुआ दिखाई देता है।

आनंद की स्फुरणा

लोक के अग्रभाग में जैसे सिद्धभगवान शरीर वगैर के हैं, उसीप्रकार तेरा आत्मा भी, हे

जीव! शरीर वगैर का ही है। 'शरीर से जुदा' अर्थात् शरीर बिना का; ऐसा जानकर हे जीव! देह से विरक्त होकर अपनी आत्मा को निजस्वरूप के चिंतन में लगा। उसमें तुझे परमानंद की स्फुरणा मिलेगी।

अहा, समभाव में स्थित धर्मात्मा-योगी को उसकी निर्विकल्प समाधि में वीतरागी अचिंत्य परम आनंद को देनेवाला जो कोई परमतत्त्व स्फुरायमान होता है, वही परमात्मा है। व्यवहार से विमुख होकर शुद्धात्मा के अनुष्ठान (अनुभव) में जो स्थित है, ऐसे किसी विरलयोगी को अपूर्व परम आनंद प्रकट होता है। ऐसा परम आनंदस्वरूप जो कोई परमतत्त्व है, वही उपादेय है, और उससे विपरीत दूसरा सब ही हेय है—ऐसा हे शिष्य! तू जान।—ऐसा जानकर तू अपनी आत्मा को ही उपादेयरूप बनाकर उसमें अपने उपयोग को लगा... उसमें तुझे कोई अपूर्व आनंद स्फुरित होगा।

जोरदार (सशक्त) हो

कोई कहे; अरे, इतनी बड़ी बात? हमारी शक्ति तो थोड़ी और यह तो बहुत बड़ी बात! तो कहते हैं कि—अरे जीव! तू जोरदार बन... मैं छोटा नहीं हूँ परंतु सिद्ध जैसा हूँ—ऐसा जोरदार होकर आत्मा को परमात्मा के रूप में प्रतीत कर। 'मैं अपूर्ण, मैं रागी, मैं पामर, मैं निसत्व, मैं अज्ञानी... इतनी बड़ी परमात्मा होने की बात हमें कैसे समझ में आये?' ऐसी हल्की-ढीली बात ज्ञान में से निकाल दे, और 'मैं पूर्ण, मैं वीतराग, मैं परमात्मा, मैं सर्वज्ञस्वभाव से परिपूर्ण' ऐसे निश्चय-स्वभाव को दृष्टि में रखकर तू जोरदार हो, इस स्वभाव की तरफ जोर करने से परमानंद के अनुभव की स्फुरणासहित, अज्ञान मिटकर ज्ञान होगा; राग मिटकर वीतरागता होगी; पामरता टलकर प्रभुता खिलेगी। परंतु एक बार व्यवहार में से बाहर निकलकर चिदानंद शुद्धस्वरूप में निश्चल हो जा। इस शुद्धदृष्टि में और इस स्वानुभूति में ऐसा जोर है कि इससे केवलज्ञान और सिद्धपद मिल जाए। इसलिए हे मुमुक्षु! तू जोरदार हो। आत्मा के स्वभाव की तरफ उत्साहित हो। व्यवहार (विकल्पों से-राग से) दूर होकर आत्मा के समीप आ।

कौन पास... और कौन दूर?

धर्मात्मा को अपना शुद्धात्मा ही समीप है, और परभाव तो दूर हैं; अज्ञानी स्वभाव को दूर रखकर परभावों को समीप करता है; और ज्ञानी परभावों को दूर कर स्वभाव के ही समीप जाता है। मेरे निकट की—अपनी वस्तु हो तो वह मेरा स्वभाव ही है, इसके सिवाय कोई परभाव मेरे निकट

के नहीं हैं, मेरे अपने नहीं हैं; ये तो मेरे से दूसरे हैं, दूर हैं। इसप्रकार 'स्व' को ही निकट जानकर और पर को दूर जानकर, निजस्वरूप के ही सन्मुख होकर उसका ध्यान कर। तेरा स्वरूप तुझे परम आनंद के रूप में अनुभव में आएगा। भाई! तुझे यह भवदु:ख प्यारा न हो और मोक्षसुख का तू अनुभव करना चाहता हो तो अपने ध्येय की दिशा पलट दे... आत्मा का रंग लगाकर जगत से उदासीन होकर अंतर में चैतन्यस्वभाव का ध्यान कर... इस ध्यान में तुझे परम आनंदमय मोक्षसुख का अनुभव हो।

अचल मेरु पर्वत

जैसे मेरु पर्वत चाहे जितनी हवा से भी नहीं डिगता है, वैसे ही यह चैतन्यमेरु आत्मस्वभाव विकाररूपी पवन की तरंग से चलायमान नहीं होता। चैतन्यमेरु अपने स्वरूप से कभी च्युत नहीं होता। जिसने निजस्वरूप की प्रतीति की, उसकी सम्यक् परिणति भी ऐसी अडोल है कि वह तूफान जैसे प्रतिकूल संयोगों से भी नहीं डिगती। जैसे चैतन्यमेरु अचल है; वैसे उसके आश्रय से विकसित परिणति भी अचल है। संयोग की हवा उसे डिगा नहीं सकती।

दस प्रश्न और उनके उत्तर

प्रवक्ता श्रीमद् कानजी स्वामी

प्रश्न १—अज्ञानी के व्रत-तप को बालव्रत और बालतप क्यों कहा गया है?

उत्तर १—क्योंकि अज्ञानपूर्वक हुए व्रत-तप बंध के ही कारण हैं; इसलिए उन्हें बालव्रत और बालतप कहा है।

प्रश्न २—व्रत-तप का शुभराग तो मोक्ष का कारण है या नहीं?

उत्तर २—नहीं, व्रत-तप का शुभराग तो पुण्य बंध का ही कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है।

प्रश्न ३—ज्ञानी के व्रत-तप का जो शुभराग होता है, वह तो मोक्ष का कारण होता है न?

उत्तर ३—नहीं, ज्ञानी के जो ज्ञान परिणमन (सम्यग्दर्शनादि) हैं, वे ही मोक्ष के कारण हैं; उसके जो व्रतादि का शुभराग है, वह तो बंध का ही कारण है।

प्रश्न ४—ज्ञानी और अज्ञानी में क्या विशेषता है ?

उत्तर ४—ज्ञानी और अज्ञानी में यही बड़ा अंतर है कि ज्ञानी अखंड ज्ञानचेतना का स्वामी रहकर ज्ञान भाव का ही कर्ता रहता है। वह राग का कर्ता नहीं होता, उसमें तन्मयता नहीं मानता; इसलिए उसके राग को श्रद्धा का आधार नहीं है। उसके राग बहुत थोड़ा है किंतु अज्ञानी तो राग को ही धर्म मानता है, उसमें तन्मयतापूर्वक कर्ता बनकर परिणमन करता है। इसलिये उसके व्रतादि सब भाव भी अज्ञान से परिपूर्ण हैं। [अज्ञानी चाहे एकांत ज्ञाननय का पक्षपाती हो या एकांत क्रियानय का पक्षपाती हो, राग में रुचि दोनों को समान है। अज्ञानी पाप से सुख मानता है और पुण्य से धर्म मानता है।]

प्रश्न ५—यहाँ अज्ञानी का वर्णन कर आचार्यदेव क्या समझाना चाहते हैं ?

उत्तर ५—यहाँ आचार्यदेव अज्ञानी का वर्णन कर यह सिद्धांत बताना चाहते हैं कि ज्ञानभाव ही मोक्ष का कारण है और रागभाव मोक्ष का कारण नहीं है। यदि व्रतादि का राग, मोक्ष का कारण हो तो अज्ञानसहित व्रतादि करनेवाले जीव के भी मोक्ष क्यों नहीं होता ? जैसे अज्ञानी के व्रतादि पुण्यभाव, मोक्ष के कारण नहीं हैं; उसीप्रकार ज्ञानी के शुभरागरूप व्यवहार व्रतादि पुण्य भाव भी मोक्ष के वास्तविक कारण नहीं हैं, उपचार कारण हैं। उसमें अंतर्मुख हुए ज्ञानमय भाव ही मोक्ष के सच्चे कारण हैं।

जिनशासन में सर्वज्ञ भगवान ने व्रत-पूजादि शुभ परिणामों को पुण्य कहा है, उन्हें मोक्ष का साधन नहीं कहा। मोक्ष का कारणरूप धर्म तो जीव का मोह-क्षोभ रहित शुद्धपरिणाम है। (देखो, भावपाहुड़ गाथा ८३)

प्रश्न ६—पुण्य को धर्म माननेवाले जीव कैसे हैं ?

उत्तर ६—पुण्य को धर्म माननेवाले जीव नामर्द हैं।

प्रश्न ७—वे नामर्द जीव क्या करते हैं ?

उत्तर ७—पुण्य के शुभ परिणामों को मोक्ष के कारण मानकर उसी में अटक रहते हैं और उससे आगे बढ़कर चैतन्य का अनुभव नहीं करते। ऐसे पुरुषार्थहीन जीव कर्मचक्र को उलांघ नहीं सकते क्योंकि वे बंध के कारण को मोक्ष का कारण मानकर बंध के कारणों का आश्रय लेते हैं।

प्रश्न ८—पुरुषार्थी धर्मात्मा क्या करते हैं ?

उत्तर ८—धर्मात्मा भेदज्ञान के अपूर्व अंतर्मुख प्रयत्न द्वारा कर्म चक्र से पार होकर चैतन्य का अनुभव करते हैं। राग के अंशमात्र आश्रय में भी उसकी बुद्धि नहीं है। वह राग के किसी अंश को भी मोक्षमार्ग का तरीका नहीं मानता। वह क्रमशः चारित्रबल से भी चैतन्यस्वभाव का ही आश्रय कर ज्ञानपूर्वक (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पूर्वक) परिणमता हुआ मोक्ष को साधता है। इसप्रकार ज्ञानस्वभाव का आश्रय ही मोक्षमार्ग है और राग का आश्रय बंधमार्ग ही है।

प्रश्न ९—पुण्यकर्म के पक्षपाती जीव कैसे हैं ?

उत्तर ९—वे जीव, पुण्य कर्म के पक्षपाती हैं, जो पुण्य मुझे मोक्षमार्ग में कुछ मदद करेगा—ऐसा मानकर उसमें बुद्धिपूर्वक आश्रय का पक्षपात करता है, वह मिथ्यात्वपूर्वक कर्म को ही करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता है और जो जीव पुण्य का पक्षपात न रखते हुये पाप की तरह उसे भी बंध का कारण समझकर उसका आश्रय छोड़कर चैतन्यस्वभाव का आश्रय करता है, वह क्रमशः स्वसन्मुखता के बल से ज्ञान की आराधना करता हुआ कर्म बंधन से मुक्त होता है।

प्रश्न १०—बंध-मोक्ष का कारण क्या है ?

उत्तर १०—ज्ञानी के ज्ञानमय परिणमन में व्रतादि राग का अभाव होते हुए भी वे मुक्ति पाते हैं और अज्ञानी के व्रतादि राग का सद्भाव होते हुए भी चैतन्य के आश्रयरूप ज्ञान का अभाव होने से वह मुक्ति नहीं पाता किंतु बंधन ही पाता है। इसप्रकार सिद्धांत यह है कि ज्ञानमय परिणमन ही मोक्ष का कारण हैं और शुभकर्म तो बंध के ही कारण हैं।

(समयसार, गाथा १५२-१५३ के प्रवचन से)

अरहंतों द्वारा सेवित स्वाश्रित मोक्षमार्ग

(समयसार सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकार-प्रवचन में से)

अहा, आचार्यदेव की कितनी नि:शंकता ! शुद्धज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से स्वयं मोक्षमार्ग के उपासक होकर, सभी अरहंतदेवों को साक्षीरूप में रखकर बेधड़क कहते हैं कि अहो, सभी अरहंतदेवों ने मोक्षमार्ग के रूप में ऐसे शुद्धज्ञानमय दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ही उपासना की है—ऐसा देखने में आता है। सभी अरहंतदेवों द्वारा सेवित एवं उपदिष्ट यही एक मार्ग है, अन्य कोई नहीं। स्वद्रव्य का आश्रय कर मुमुक्षुओं को इसी एक मार्ग का सेवन करना उचित है। ऐसे मार्गप्रदर्शक संतों को नमस्कार हो।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो कि शुद्ध आत्मा के आश्रित रहते हैं, वे ही एक मोक्षमार्ग हैं। देहाश्रित अर्थात् पराश्रित ऐसा जो द्रव्यलिंग है, उसके आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं होता। भाई ! मोक्ष का मार्ग तो आत्मा के आश्रित होता है कि पर के आश्रित ? सभी अरहंत भगवंतों ने किस मार्ग को अपनाया ? कि उन्होंने शुद्धज्ञानमय रूप का सेवन किया और देहाश्रित ऐसे द्रव्यलिंग के ममत्व को छोड़ दिया। शुद्धज्ञानमय जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसी का मोक्षमार्ग के रूप में सभी अरहंत भगवंतों को उपासना देखने में आती है, ऐसा हमारे भी देखने में आता है। यदि कोई पूछे कि 'क्या तुमने सभी तीर्थंकरों को देख लिया है ? तो उसका उत्तर है कि हाँ; स्वानुभव से हमने ऐसे मोक्षमार्ग को जान लिया है, और इस मार्ग की हम उपासना कर रहे हैं, इस उपासना की नि:शंकता के बल पर हमने जान लिया है कि जिन भी जीवों को मोक्ष मिली है, उन्हें ऐसे मार्ग की उपासना से ही मोक्ष मिली है। अनंत तीर्थंकरों-अरहंतों ने इसी मार्ग का सेवन किया है और इस ही मार्ग का उपदेश दिया है। तीनों कालों के समस्त मोक्षगामी जीवों के लिये मोक्ष का यह एक ही मार्ग है। कौन सा मार्ग ? कि शुद्धज्ञानमय, अर्थात् तनिक भी रागमय नहीं, ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वही मार्ग है—वह मार्ग आत्मा के ही आश्रित है।

अहा, स्वाश्रितमार्ग की इस बात को समझे तो समस्त पराश्रयभावों का ममत्व छूट जाये। मुनि को जो विकल्प होता है, वह भी शुद्धज्ञान के बाहर होता है, उस विकल्प के आश्रित मार्ग नहीं है; मार्ग तो शुद्धज्ञान के आश्रित ही है। अरे, मुनि के महाव्रत के विकल्प के आश्रित भी जहाँ मोक्षमार्ग नहीं है, वहाँ जड़ देह की क्रिया के आश्रित मोक्षमार्ग होने की मान्यता तो कहाँ रही ? जो

देह की क्रिया के आश्रित मोक्षमार्ग होता तो अरहंत भगवंत उस देह का ममत्व छोड़कर शुद्धज्ञान में क्यों स्थिर होते ? अरहंत भगवंतों ने तो देह का ममत्व छोड़कर शुद्धज्ञानमय निश्चय-रत्नत्रय को ही मोक्षमार्ग के रूप में ग्रहण किया—इसप्रकार अरहंतों की साक्षी देकर, स्वानुभवसहित आचार्यदेव कहते हैं कि अरहंत भगवंतों ने ऐसे किया, इस पर से निश्चित होता है कि ऐसा ही वास्तविक मोक्षमार्ग है; दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के शुद्धभावरूप में परिणमित आत्मा ही वास्तव में मोक्षमार्ग है, उसे 'कारणसमयसार' कहते हैं। राग तो आस्रवतत्त्व है, उसे वास्तव में आत्मा ही नहीं कहते। शुद्ध परिणाम में अभेदरूप से परिणमित हुआ, उसे ही वास्तव में आत्मा कहा है। मुनि तो वास्तव में वही है जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का मोक्षमार्ग के रूप में सेवन कर रहा है। मुनि को अथवा गृहस्थ को यदि राग है तो वह मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्धज्ञान के आश्रित जितना रत्नत्रय है, उतना ही मोक्षमार्ग है। मोक्ष क्या है ? मोक्ष सर्व कर्मों का अभावरूप शुद्ध आत्मपरिणाम है।

मोक्ष का कारण क्या ? कि जिसप्रकार कार्य शुद्ध है, उसीप्रकार उसका कारण भी शुद्ध ही है। कारण और कार्य की जाति एक ही होती है। हीन-अधिक का भेद होने पर भी दोनों की जाति तो एक ही होती है। कार्य शुद्ध और उसका कारण अशुद्ध—ऐसा नहीं हो सकता। कार्य वीतराग और उसका कारण राग-ऐसा नहीं होता। जैसे मोक्ष पूर्ण शुद्धतारूप और राग के अभावरूप है; उसीप्रकार उस मोक्ष के साधनरूप रत्नत्रय भी शुद्ध और राग के अभावरूप ही हैं। भले ही साधकदशा में केवलज्ञान सदृश पूर्ण शुद्ध न हो, तथापि वहाँ जितनी शुद्धता है, उतना ही मोक्षमार्ग है और जितना राग है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। धर्मात्मा उस राग का मोक्षमार्ग के रूप में सेवन नहीं करता, अपितु रत्नत्रय की शुद्धि को ही मोक्षमार्ग के रूप में सेवन करता है।

हे भाई, तीर्थंकरों ने तो ऐसे शुद्ध आत्माश्रित रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का सेवन किया है तो तू ड्यौढ़ा चतुर होकर इससे दूसरा मोक्षमार्ग कहाँ से ले आया ? शरीर की क्रिया के आश्रित अथवा राग के आश्रित मोक्षमार्ग होता है—ऐसा मानना तेरी दुर्बुद्धि है। अरे, देह की क्रिया से धर्म होता है—यह बात अरहंत शासन में कैसी ? अरहंत शासन में तो देह को परद्रव्य कहा है, उस परद्रव्य के आश्रित आत्मा का मोक्षमार्ग जरा भी नहीं है। अतएव हे जीव ! ऐसे परद्रव्य का ममत्व छोड़ और शुद्ध आत्मा का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग में अपनी बुद्धि लगा।

शुद्धज्ञानमय आत्मा है, वह अमूर्तिक है; ऐसी शुद्धज्ञानमय आत्मा में देह अथवा रागादि

नहीं हैं, अर्थात् देहाश्रित अथवा रागाश्रित मोक्षमार्ग नहीं है। देह से और राग से दूर जो शुद्धज्ञानमय आत्मा का सेवन है, वह ही मोक्षमार्ग है। परंतु द्रव्यलिंग (अर्थात् नग्न शरीर अथवा महाव्रतादि के शुभ विकल्प)—जो कि शुद्धज्ञान से वास्तव में भिन्न है, मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्धज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से स्वयं ऐसे मोक्षमार्ग के उपासक होकर, आचार्यदेव समस्त तीर्थंकरों की साक्षी देकर नि:शंकरूप में कहते हैं कि अहो! सभी भगवान अरहंतदेवों ने ऐसे शुद्धज्ञानमय दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ही मोक्षमार्ग के रूप में उपासना की है—ऐसा देखने में आता है—

श्रमणों, जिनों तीर्थंकरों इस रीत सेया मार्ग को,
सिद्धि वरी; नमुं उन्हीं को, निर्वाण के उस मार्ग को॥ (प्रवचनसार)

—वाह, देखो यह तीर्थंकर का मार्ग! हम तो देहादि द्रव्यलिंग का ममत्व छोड़कर, शुद्धज्ञान के सेवन द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना से ऐसे मोक्षमार्ग को साध रहे हैं, और सभी तीर्थंकरों ने, सभी संतों ने इस ही प्रकार से मोक्षमार्ग की उपासना की थी—ऐसा नि:शंकरूप से हमारे निर्णय में आता है।

यदि देहमय लिंग अथवा उस तरफ के शुभ विकल्प मोक्ष के कारण होते तो अरहंत भगवान उनका ममत्व छोड़कर दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना किसलिये करते? द्रव्यलिंग से ही मोक्ष प्राप्त कर लेते!—परंतु अरहंत भगवंतों ने तो देहादि से और रागादि से विमुख होकर शुद्धज्ञानमय चिदानंद तत्त्व के अनुभव (सन्मुखता) द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ही उपासना की; अत: यह निश्चित हुआ कि देहमयलिंग मोक्षमार्ग नहीं है, राग भी मोक्षमार्ग नहीं है; परमार्थ से—वास्तव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना ही मोक्षमार्ग है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना किसप्रकार हो?—कि शुद्ध ज्ञानमय आत्मा के सेवन से ही (अर्थात् स्वद्रव्य के सेवन से ही) उस रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग की उपासना होती है।—और यही शास्त्र की सम्मति है।

अहा, आचार्यदेव की कितनी नि:शंकता। स्वयं तो अंदर निर्विकल्प आनंद में झूलते-झूलते (ऐसे) मोक्षमार्ग को साध रहे हैं, और जगत को बेधड़क तरीके से कहते हैं कि सभी अरहंत भगवंतों द्वारा उपासित यही एक मार्ग है, दूसरा कोई नहीं। सभी भगवान अरहंतों के शुद्ध ज्ञानरूपता है और उन्होंने द्रव्यलिंग के आश्रयभूत शरीर का ममत्व छोड़ दिया है; इसलिये द्रव्यलिंग के त्याग द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मोक्षमार्ग के रूप में उपासना देखने में आती है; सभी तीर्थंकरों ने मोक्षमार्ग की एक ही प्रकार से उपासना की है—ऐसा हमारे 'देखने में आता है।'

कोई कहता है—'देखने में आता है'—ऐसा जो कहा तो क्या आचार्यदेव ने अरहंतदेवों को अपनी आँखों से देखा है? क्योंकि इस समय अथवा कुन्दकुन्दस्वामी जब थे तब भी, यहाँ अरहंतदेव तो थे नहीं, तो किसप्रकार देखा?

उसको यहाँ कहते हैं कि अरे भाई! आत्मा में जैसे ही मोक्षमार्ग का निर्णय हुआ, साक्षात् अनुभव हुआ, वहाँ नि:संदेह विश्वास हो गया कि बस, मोक्षमार्ग तो तीनों कालों में ऐसा ही होता है। और फिर कुन्दकुन्दाचार्य की तो विदेहक्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर भगवान से भेंट भी हुई थी, आठ-आठ दिन तक भगवान सीमंधर परमात्मा की सभा में दिव्यध्वनि का साक्षात् श्रवण किया था। जहाँ अनेक केवलज्ञानी भगवंत विराजते हैं, जहाँ गणधरदेव और मुनिवरों के समूह ऐसे मोक्षमार्ग की सिद्धि कर रहे हैं; उनको प्रत्यक्ष देखकर, और वैसे मोक्षमार्ग को अपनी आत्मा में प्रकटाकर आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! मोक्षमार्ग तो इस शुद्ध ज्ञानमय आत्मा का आश्रय लेकर रत्नत्रय की उपासना से ही मिलता है—ऐसा हमारे देखने में आता है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग हमारे देखने में नहीं आता। अतएव तू भी शुद्ध ज्ञानमय स्वद्रव्य का आश्रय लेकर ऐसे ही मोक्षमार्ग की उपासना कर। मुमुक्षुओं को यह एक ही मार्ग अत्यंत आदरपूर्वक सेवन करने योग्य है।

मार्ग प्रकाशक संतों को नमस्कार हो!

वि...वि...ध... व...च...ना...मृ...त

आत्मधर्म का चालू विभाग : लेखांक—४: विविध वचनामृत का यह विभाग प्रवचनों में से, विविध शास्त्रों में से तथा रात्रिचर्चा वगैरह प्रसंगों में से तैयार किया जाता है।

(११०) मुक्ति के लिये...

शुद्ध ज्ञानस्वभावी यह आत्मा सिद्ध भगवान जैसी प्रभुता से परिपूर्ण है। अपनी आत्मा में सिद्ध सदृश प्रभुता स्थापित कर उसका स्वानुभव करने के सिवाय मुक्ति के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है, नहीं ही है। मुक्ति के लिये हे मुमुक्षु! तू ऐसी स्वानुभूति का सेवन कर।

(१११) भेदज्ञानरूपी बिजली

पर्वत के ऊपर बिजली गिरने से जो दरार पड़ती है, वह फिर नहीं जुड़ती; उसीप्रकार ज्ञानानंदस्वरूप के स्वानुभव के तीव्र अभ्यास द्वारा जहाँ भेदज्ञानरूपी बिजली पड़ी, वहीं आत्मा और राग की एकता के बीच दरार पड़ी, और मोह पर्वत टूट गया, वह अब फिर से कभी भी जुड़ नहीं सकता; ज्ञानी का ज्ञान, राग में तन्मय नहीं होता। रे जीव! इसप्रकार के भेदज्ञान के अलावा अन्य सभी तैनें अनंत बार किया; परंतु जन्म-मरण का दुःख अभी तक नहीं मिटा; इसलिये अब यही उद्यम कर जिससे जन्म-मरण मिटे।

(११२) स्वानुभूति

जहाँ स्वानुभूति है, वहीं धर्म है; जहाँ स्वानुभूति नहीं, वहाँ धर्म नहीं है। मोक्षमार्ग स्वानुभूति में समाता है। स्वानुभूति में वीतरागता है, स्वानुभूति में आनंद की लहर है। स्वानुभूति संतों के उपदेश का सार है। स्वानुभूति ही परमात्मा का साक्षात्कार है। स्वानुभूति की अजोड़ महिमा है। नमस्कार हो स्वानुभवी संत को।

(११३) किसका गाना गाया जाता है ?

भाई, शास्त्रों ने जो अगाध गाना गया है, वह किसका ?—तेरे स्वयं का; शास्त्रों में संतों ने आत्मस्वभाव की जो अचिंत्य महिमा खूब विस्तार से वर्णन की है, वह सब तेरी ही महिमा है। इसलिये तेरा महिमावंत स्वरूप क्या है, वह लक्ष में ले, तब ही तुझे संतों का हृदय और शास्त्रों का हार्द (हृदयगत तत्त्व) समझ में आएगा। तेरा आराध्य तो तेरे में ही है।

(११४) जहाँ तक आत्मा.....

यह ज्ञानस्वरूप आत्मा देहादि से और रागादि से अलग है। ऐसा वास्तविक स्वरूप जहाँ तक आत्मा न जाने, वहाँ तक मोह नहीं मिटता। जब यथार्थ स्वरूप में आत्मा की पहिचान होती है, तब ही पर का माहात्म्य समाप्त होता है और अपना माहात्म्य आता है। और ऐसा माहात्म्य आवे, तब ही आत्मा की सच्ची साधना होवे।

दु:ख तो बहुत सहन किये... लेकिन

अरे जीव! अनंत संसार में परिभ्रमण करते तूने बहुत दु:ख सहन किये, नरकादि के घोर में घोर दु:खों से तू पार हो गया—लेकिन... विराधक भाव से मुक्त अर्थात् एकबार यदि आराधक भाव के बल द्वारा संपूर्ण दु:खों से पार निकल जा अर्थात् कि चाहे जैसी प्रतिकूलता आये तो भी आराधक भाव से तू न डिगे तो दुबारा यह संसार का कोई दु:ख तुझको नहीं आये और तेरा सुखधाम तुझको प्राप्त हो। [चर्चा में से]

समाचार संग्रह

सोनगढ़ (सुवर्णपुरी)

तारीख ३-४-६६ परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी सुख शांति से विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे श्री पूज्यपादाचार्यकृत इष्टोपदेश ग्रंथ तथा दोपहर को श्री नियमसारजी शास्त्र चलता है।

जिनवाणी आगम मंदिर

श्री रामजीभाई सम्मान कमेटी द्वारा जिनवाणी भवन का शिलान्यास फाल्गुन सुदी २, तारीख ७-२-६६ के दिन पूज्य श्री कानजी स्वामी की पावन छत्रछाया में हुआ, उस दिन बड़ा उत्सव मनाया गया था। उस हॉल का काम शीघ्र सुचारु ढंग से हो रहा है।

अष्टाह्निका महोत्सव

फाल्गुन सुदी ७ से १५ तक श्री नंदीश्वर द्वीप पूजन; तेरह द्वीप संबंधी अकृत्रिम जिनालयस्थ जिनेन्द्रों की पूजा सामूहिक रूप से बड़े ठाठबाट से हुई।

मानस्तम्भ उत्सव

चैत्र सुदी १० श्री जिनेन्द्र धर्म वैभवस्तम्भ की वर्षगांठ का उत्सव बड़े ठाठबाट से जिनेन्द्र पूजन-भक्ति; रथयात्रा, अभिषेक आदि पूजन विधि सहित मनाया गया।

महावीर जयंती

चैत्र सुदी १३ हमारे आराध्य, तीर्थनायक, जिनेन्द्र भगवान महावीर प्रभु का जन्मकल्याणक महोत्सव बड़ी भक्ति-उत्साह-उमंग सहित मनाया गया। आज से ३१ साल पूर्व श्री कानजीस्वामी ने श्वेताम्बर मत का सर्वथा त्याग करके शुद्धाम्नाय दिगम्बर जैन तेरह पंथ की मान्यतानुसार परिवर्तन प्रसिद्ध करके, सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थ और हेय-उपादेय तत्त्व का और मोक्षमार्ग का निर्मल ढंग से उपदेश देना शुरु किया था। उस पवित्र स्थान का नाम स्टार ऑफ इण्डिया है। उसी स्थान पर प्रवचन करने की प्रार्थना आयी थी। अतः स्वामीजी का वहाँ पर भगवान महावीर प्रभु के उपदेश संबंधी प्रवचन हुआ, भगवान की रथयात्रा हुई।

जैनदर्शन शिक्षण-वर्ग (ज्ञानयज्ञमय शिक्षण शिविर)

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) तारीख १५-५-६६ से शुरु होकर तारीख २५-५-६६ जेठ सुदी पंचमी तक धार्मिक तीन कक्षा के रूप में जैन शिक्षण वर्ग चलेगा। धर्म जिज्ञासुओं को पवित्र तत्त्वज्ञान का

लाभ लेने हेतु पधारने का आमंत्रण है, युवक वर्ग जो जैनधर्म समझने की योग्यतावान हैं १३ साल से अधिक उम्रवान हों, वे आ सकते हैं। आने के पूर्व पत्र द्वारा सूचना दीजिएगा। यह शिविर मात्र पुरुषों के लिये है।

निवेदक—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विहार समाचार

सोनगढ़ वैशाख सुदी दोज ७७ वीं वर्षगाँठ (पूज्य कानजी स्वामी की जन्म-जयन्ती) मनाने के पश्चात् पूज्य स्वामीजी वैशाख सुदी ४, तारीख २४-४-६६ रविवार के दिन राजकोट पधारेंगे। वहाँ १५ दिन ठहरेंगे और वदी ५, तारीख ९-५-६६ सोमवार सोनगढ़ वापिस पधारेंगे। पश्चात् तारीख १५-५-६६ सोनगढ़ में जैनशिक्षण वर्ग शुरु होंगे।

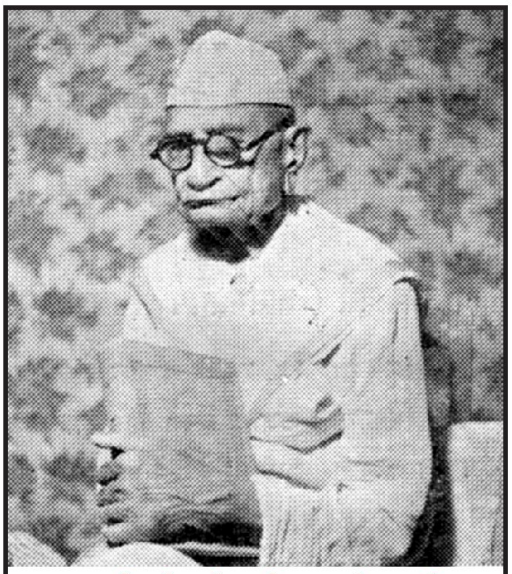

स्व० श्री वीरजीभाई ताराचंद वारिया
वकील, जामनगर, उम्र ९५ वर्ष

वैराग्य समाचार

सौराष्ट्र भर में आज से ५० वर्ष पूर्व प्रथम नंबर में दिगम्बर जैनधर्म के अच्छे अभ्यास करनेवाले थे, पूज्य कानजी स्वामी के समागम में आकर सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का सम्यक्श्रद्धान—ज्ञान सहित अनुभवी अनेक प्रशस्त गुण को प्राप्त आप बड़े यशस्वी, उदारदानी, ज्ञानी तथा धर्म प्रभावक थे। सोनगढ़ में रहकर स्वामीजी के गाढ़ परिचय सहित निरंतर धर्मश्रवण करते थे, आपका चार पीढ़ी तक का विशाल परिवार ११२ संख्या में विद्यमान है, सभी को दिगम्बर जैनधर्म के प्रति पक्का श्रद्धान है। आपको कोई रोग नहीं था, मात्र वृद्धावस्थाजन्य साहजिक शारीरिक कमजोरी बढ़ती गई किंतु आत्मबल अपूर्व

और बढ़ता था। पूज्य कानजी स्वामी स्वयं आपके पास धर्म प्रेमवश आकर धर्म सुनाते थे, यह थी आपकी अनुपम पात्रता। आप जामनगर में तारीख २३-२-६६ वीर सं० २४९२ फागण सुदी ३ के दिन यथार्थ जागृति सहित शुद्धज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायकस्वरूप का स्मरण, झंकार और अनुभव सहित स्वर्गवासी हुए। हम भगवान के सामने प्रार्थना करते हैं कि वो आसन्न भव्य आत्मा शीघ्र निज परमपद को प्राप्त करें।

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

टेप रेकार्डिंग रील द्वारा प्रवचन प्रचार

सोनगढ़ : श्री नवनीतभाई सी. जवेरी की ओर से सुयोग्य प्रचारक विद्वान द्वारा तारीख २०-८-६५ से तारीख १३-३-६६ तक प्रथम से आमंत्रण आने से जलगांव, चिखली, ढासाला, देवघाबे, कारंजा, परतवाड़ा, मलकापुर, चांदूर, बुरहानपुर, लालबाग, खंडवा, पंधाना, इंदौर, महिदपुर आदि स्थान गये थे। निमंत्रणवाले बहुत गाँव शेष हैं किंतु प्रचारकजी की इच्छा पाँच मास तक सोनगढ़ रहने की है, पश्चात् निमंत्रणवाले गाँवों में जायेंगे।

कार्यक्रम में पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचन, शास्त्र सभा, शंका समाधान, जैनदर्शन शिक्षणवर्ग तथा स्वामीजी सहित विशाल जैन तीर्थयात्रा की रंगीन फिल्म दिखाई जाती है।

ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

प्रौढ़ स्वाध्यायवर्ग

सोलापुर—श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिरजी में सामुदायिक धार्मिक स्वाध्याय व शिक्षणवर्ग तारीख २५-२-६६ से शुरु हुए हैं। उसमें क्रमशः मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला, इष्टोपदेश, रत्नकरण्डश्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, समाधिशतक, समयसार नाटक आदि चलता रहेगा। प्रस्तुतवर्ग का संचालन श्री पंडित अनंतराज तुपकरजी करते हैं। हमेशा बहुत संख्या में मुमुक्षुगण नियमित शामिल होकर लाभ ले रहे हैं।

—अध्यक्ष - श्री आदिनाथ महाराज जैनमंदिर
शुक्रवार पेठ, सोलापुर

श्री जैन विद्यार्थी गृह

छात्रावास १४ साल से सुचारु रूप से चल रहा है, ५ से ११ वीं कक्षा के छात्रों को भर्ती करते हैं। यहाँ माध्यम भाषा गुजराती है, भोजन फीस माहवार २५) और कम से कम १५) रुपया है। दूध, घी, अनाज, बाजारू व राशन के न लाकर शुद्ध और अच्छे से अच्छे लाये जाते हैं। संस्था को तो एक छात्र का माहवार खर्च ८०) करीब आता है। यहाँ छात्रों को स्कूल की पढ़ाई, दिगम्बर जैनधर्म तत्त्वज्ञान की पढ़ाई, तथा श्री कानजी स्वामी के प्रवचनों का अपूर्व लाभ मिलता है।

प्रवेश पाने के इच्छुक तारीख २५-४-६६ तक फार्म मँगवाकर तारीख १५-५-६६ तक के समय में, सूचित करें। वार्षिक परीक्षा के प्रमाणपत्र भी साथ भेजना जरूरी हैं।

व्यवस्थापक—दिगम्बर जैन विद्यार्थी गृह, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सूचना

प्रवचनसारजी शास्त्र में श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने परिशिष्ट अधिकार में ४७ नयों का वर्णन किया है, उस पर पूज्य कानजीस्वामी के विस्तृत प्रवचन जो सम्यक् अनेकांत शैली से अनुपम आत्म वैभव दर्शानेवाले हैं—गुजराती भाषा में 'नयप्रज्ञापन' नामक ग्रंथ के रूप में छपकर बिक गये, उन्हीं का हिन्दी भाषा में प्रेस मैटर तैयार है। प्रथम एक हजार या ८०० प्रति के ग्राहक होने पर छपवाने का विचार किया जायेगा। मूल्य एक पुस्तक का करीब चार रुपया होगा, पृष्ठ संख्या ३७० करीब होगी। प्रथम से ग्राहक बननेवाले शीघ्र सूचित करें।

पुण्य के रुचिवान हैं, वे जीव सुमार्ग की इच्छुकता क्या है ? वह भी नहीं जानते

नियमसार जीव अधिकार गाथा १८ की संस्कृत टीका में श्री पद्मप्रभमलधारीदेव ने कहा है कि—

संज्ञानभाव परिमुक्त विमुग्ध जीवः
कुर्वन् शुभाशुभमनेक विधं स कर्म।
निर्मुक्ति मणुमप्यभिवांच्छि तुं नो
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके॥३२॥

अर्थ—जो जीव सम्यग्ज्ञानभाव रहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछने का भी नहीं जानता; उसको लोक में कोई शरण नहीं है॥३२॥

बाद कलश-श्लोक नं० ३४ में कहा है कि—

असति सति विभावे तस्य चिंतास्ति नो नः
सततमनुभवामः शुद्धमात्मानमेकम्।
हृदय कमल संस्थं सर्व कर्म प्रमुक्तं
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात्॥३४॥

अर्थ—(आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से उनकी हमें चिंता नहीं है; हम तो हृदय कमल में स्थित, सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा को एक को सतत् अनुभव करते हैं, कारण कि अन्य किसी भी प्रकार मुक्ति है ही नहीं, है ही नहीं॥३४॥

रजत जयंती महोत्सव

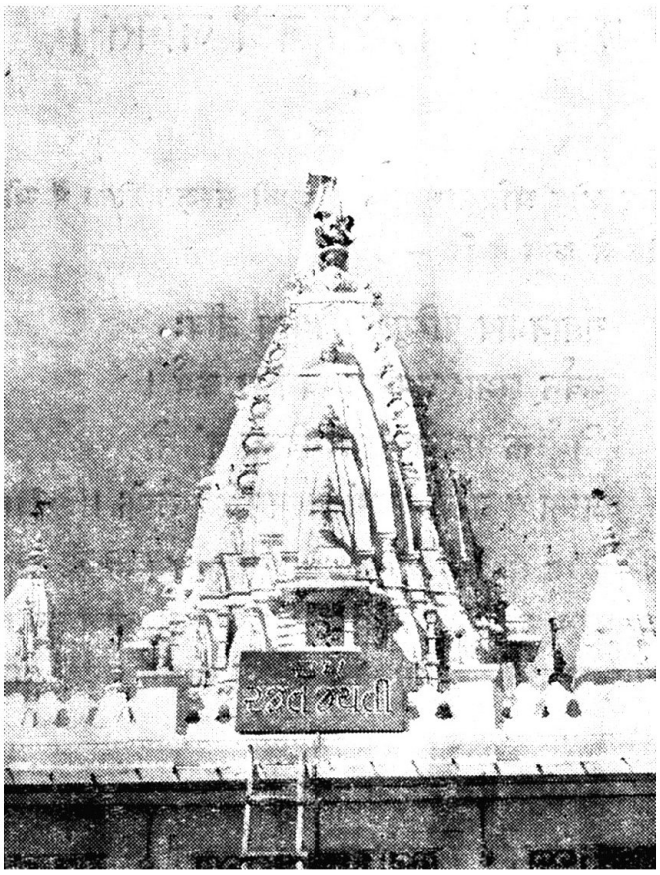

सोनगढ़—फा० सुदी २ को जिनमंदिर की २५ वीं वर्षगाँठ का रजत जयंती उत्सव मनाया गया। आठ दिन तक विविध कार्यक्रम में—जिनेन्द्र की समूह पूजा-भक्ति, विशाल रथयात्रा, अजमेर की भजनमंडली द्वारा खास भक्ति भजन, जिनमंदिर, स्वाध्यायमंदिर, समवसरण, मानस्तम्भजी, प्रवचनमंडप तथा नगरी की शोभा सजावट, बड़ी संख्या में उत्सव में भाग लेनेवाले मेहमान, पूज्य स्वामीजी के द्वारा छहढाला तथा परमात्मप्रकाश पर अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचन, धर्मरत्न श्री दीपचंदजी शेठिया (सरदार शहर) का आगमन और दिगम्बर जैन विद्यार्थीगृह के छात्रों द्वारा अकलंक निकलंक का धर्म प्रभावोत्पादक ड्रामा, बालाओं के तत्वचर्चामय ड्रामा, इत्यादि कार्यक्रम द्वारा यह उत्सव सम्पन्न हुआ। ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

रजत जयन्ती अवसर पर निकली विशाल रथयात्रा का एक दृश्य

रजत जयन्ती अवसर पर निकली रथयात्रा का एक और अन्य दृश्य

खास निवेदन

आत्मधर्म मासिक पत्र द्वारा २१ साल से सर्वज्ञ वीतराग कथित पवित्र तत्त्वज्ञान का प्रचार हो रहा है। २१ वाँ वर्ष का चंदा चैत्र मास में समाप्त हो जाता है। खुशी समाचार यह है कि हमारी संस्था के भूतपूर्व प्रमुख श्री रामजीभाई स्मारक की ओर से इस वर्ष के लिये आत्मधर्म का चंदा घटाकर 'दो रुपया' रखा है। मुमुक्षु मंडलों को प्रार्थना है कि ज्यादा से ज्यादा संख्या में आत्मधर्म के नये ग्राहक बनाकर और चालू ग्राहकों से मिलकर आत्मधर्म का चंदा एकत्र करके मनिआर्डर या चैक से भेजने का कष्ट कीजियेगा, ताकि आगामी ग्राहक संख्या का अंदाजा हम लगा सकें। ग्राहक के नाम पूर्ण पते के साथ रेलवे स्टेशन, पोस्ट का जिले का साफ नाम, नये ग्राहक या पुराने ग्राहक ऐसा अवश्य लिखें, प्रथम से ही जिन्होंने चंदा जमा कराया है, भेज दिया है, वह भी हमको पत्र द्वारा सूचित करें, आपका ग्राहक नं० भी अवश्य लिखें। वैशाख मास से आत्मधर्म बड़ी साहज में, चित्र, कथा, विशेष लेख, बाल विभाग सहित प्रकाशित होगा। वी०पी० करने में बड़ी कठिनाई रहती है। आशा है कि शीघ्र उपरोक्त सहयोग दें।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

(आत्मधर्म विभाग)

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५–०	जैन बाल पोथी	०–२५
प्रवचनसार	४–०	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०–१५
नियमसार	४–०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०–८७
पंचास्तिकाय	४–५०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२–५०
आत्मप्रसिद्धि	४–०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१–८५
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०)	५–०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१–४५
स्वयंभू स्तोत्र	०–६०	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
मुक्ति का मार्ग	०–६०	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०–८५
समयसार प्रवचन भाग १	४–७५	भेदविज्ञानसार	२–०
समयसार प्रवचन भाग २	नहीं है	अध्यात्मपाठ	३–०
समयसार प्रवचन भाग ३	४–२५	भक्ति पाठ संग्रह	१–०
समयसार प्रवचन भाग ४	४–०	वैराग्य पाठ संग्रह	१–०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०–१५
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१–०	स्तोत्रत्रयी	०–५०
” ”द्वितीय भाग	२–०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०–२५
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०–६०	‘आत्मधर्म मासिक’ वार्षिक चंदा	३–०
भाग–२ ०–६० भाग–३	०–६०	” फाईलें सजिल्द	३–७५
योगसार–निमित्त उपादान दोहा	०–१२	शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०–१२
श्री अनुभवप्रकाश	०–३५	जैनतत्त्व मीमांसा	१–०
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१–०	बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में १८)	
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन बृ० पूजा	०–७५	ग्रन्थ का मात्र	६–०
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६–०		
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१–५०		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।